

मथुरा परिचय



॥हित्यसह्योगीप्रकाशनलि
मथुरा

मथुरा-परिचय



धन्यैषा मथुरा नगरी यमुनातीरशोभिता ।
कृष्णजन्मस्थली पुण्या उत्सवामोदपूरिता ॥



लेखक—

श्री कृष्णदत्त वाजपेयी, एम. ए.,
संग्रहाध्यक्ष, पुरातत्त्व संग्रहालय, मथुरा

कृष्णसाहित्य सहयोगी प्रकाशन लिं,

मथुरा

संस्करण]

१९५० ई०

[मूल्य डेढ़ रुपया

प्रकाशक—

लोक साहित्य सहयोगी प्रकाशन लि०,
मथुरा.

सर्वाधिकार सुरक्षित
मूल्य डेढ़ रुपया

मुद्रक—

श्री जगदीश शरण
राष्ट्रीय प्रिंटिंग प्रेस, मथुरा

समर्पण

भारतीय इतिहास एवं संस्कृति के अनन्य आराधक
राष्ट्रभाषा हिंदी के उन्नायक
डा० समूर्णनन्द जी को

निवेदन

मथुरा-जैसे नगर के संबंध में हिन्दी में किसी अच्छो परिचय-पुस्तक का न होना एक खटकने वाली बात थी। अब से लगभग सत्तर वर्ष पूर्व स्वनामधन्य श्री ग्राउंज़ ने, जबकि वे मथुरा ज़िले के कलेक्टर थे, 'मथुरा-ए डिस्ट्रिक्ट मेम्बायर' नामक एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ अप्रेज़ी में लिखा था, जिसमें इस ज़िले के विभिन्न स्थानों का विस्तृत परिचय दिया गया था। परंतु अब यह ग्रन्थ अप्राप्य है। दूसरे, इसके प्रकाशन के बाद अब तक जो अन्वेषण हुए हैं उनके परिणाम-स्वरूप 'मेम्बायर' में लिखी हुई बहुत सी बातों में संशोधन करना आवश्यक हो गया है।

'मथुरा-परिचय' इस उद्देश्य से लिखी गई है कि इसके द्वारा लोगों को मथुरा नगर के संबंध में, जो शताब्दियों से भारत का एक प्रमुख सांस्कृतिक केंद्र रहा है, वास्तविक जानकारी प्राप्त हो। इस पुस्तक में पाँच अध्याय रखे गये हैं— पहले अध्याय में मथुरा की स्थापना, उसके क्रमशः विस्तार तथा तत्सम्बन्धी प्राचीन साहित्यिक वर्णनों का उल्लेख किया गया है। दूसरे अध्याय में प्राचीनतम काल से लेकर लगभग ई० पूर्व ६०० तक का और तीसरे में ई० पूर्व ६०० से त्रिटिश काल के अन्त तक का इतिहास दिया गया है। चौथे अध्याय में मथुरा में स्थापत्य, मूर्तिकला, चित्रकला आदि विविध

कलाओं के उद्घव एवं विकास का वर्णन किया गया है तथा पाँचवें अध्याय में वर्तमान मथुरा का परिचय दिया गया है। जानने योग्य आवश्यक बातों की सूचियाँ भी यथास्थान दे दी गई हैं।

प० जवाहरलाल चतुर्वेदी ने चौथे और पाँचवें अध्याय के लिये कुछ महत्त्वपूर्ण सामग्री देने की कृपा की, जिसके लिये मैं उनका बहुत आभारी हूँ। श्री रामनारायण अग्रवाल ने कई आवश्यक सूचनाएँ देने के अतिरिक्त पुस्तक के प्रकाशनार्थ जो सतत उद्योग किया उसके लिये वे मेरे धन्यवाद के पात्र हैं। भाई श्रीनारायण बाजपेयी का भी मैं कुतज्ज हूँ जिन्होंने अपने बनाये हुए कई चित्र पुस्तक के लिये प्रदान किये। पुस्तक में वर्तमान मथुरा शहर का जो नक्शा दिया है उसे श्री सूर्यप्रकाश शर्मा ने मेरे लिये तैयार करने की कृपा की है।

मुद्रण संबंधी वर्तमान कठिनाइयों के कारण यह पुस्तक उस रूप में नहीं छप सकी जिसमें मैं चाहता था। आशा है कि अगले संस्करण में आवश्यक सुधार कर दिये जावेंगे। यदि इस छोटी पुस्तक से जनसाधारण तथा विद्वानों को कुछ भी लाभ पहुँचा तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूँगा।

मथुरा,

—लेखक

होली, सं० २००६ वि०

विष्णु—मूर्च्छा

अध्याय १

विषय

पृष्ठ संख्या

मथुरा की स्थापना तथा उसका प्राचीन भौगोलिक विवरण—

१—१८

मथुरा का नामकरण	१
मथुरा नगर की स्थापना	३
प्राचीन मथुरा का वर्णन	४
प्राचीन नगरी का विस्तार	१०
शूरसेन, मथुरा या ब्रज जनपद	११
शूरसेन	११
मथुरा	१५
ब्रज (ब्रज)	१७

अध्याय २

मथुरा का इतिहास

१६-४४

(प्राचीनतम काल से लगभग ३० पू० ६०० तक)

श्री कृष्ण से पहले का इतिहास	१६
श्री कृष्ण कालीन मथुरा	२७
कंस का शासन-काल	२८
कंस की मृत्यु के बाद	३६
जरासंघ और मथुरा	३७

विषय

पृष्ठ संख्या

महाभारत युद्ध	४०
महोभारत के बाद मथुरा	४२
सोलह महाजनपद	४३

अध्याय ३

मथुरा का इतिहास

४५-८८

(१० पू० ६०० से ब्रिटिश अधिपत्य की समाप्ति तक)

महात्मा बुद्ध का समय	४५
मथुरा में जैन धर्म का आरम्भ तथा विकास	४८
मगध साम्राज्य के अन्तर्गत मथुरा	४६
शुद्ध कालीन मथुरा	५१
मथुरा पर शक व्यवर्षों का अधिकार	५२
मथुरा पर शुद्धों का पुनः अधिकार	५६
कुषाण काल	५७
मथुरा में नागों का प्रभुत्व	६०
गुप्त कालीन मथुरा	६२
गुप्त शासन के बाद मथुरा की दशा	६४
हुएन-सांग का मथुरा वर्णन	६५
महमूद गजनवी का आक्रमण	६८
मथुरा पर मुसलमानों का शासन	६९
मुगल साम्राज्य के अन्तर्गत मथुरा	७१
मथुरा पर जाटों का प्रभुत्व	७२
अहमदशाह अब्दाली का आक्रमण	७४
मरहठों का अधिकार	८४
ब्रिटिश शासन-काल	८५

विषय

पृष्ठ संख्या

अध्याय ४

मथुरा में कलाओं का विकास

६०-११६

स्थापत्य	६१
मूर्ति-कला	६५
चित्रकला	१०१
सङ्गीत	१०४
साहित्य	१०७
अन्य कलाएँ	११५

अध्याय ५

वर्तमान मथुरा

१२०-१४७

स्थिति	१२०
नगर की परिक्रमा	१२१
मथुरा के मुख्य मन्दिर	१२३
अन्य दर्शनीय स्थान	१२६
मुख्य घाट	१३१
मथुरा के निवासी तथा उनके प्रधान उद्यम	१३३
प्रमुख उत्सव तथा मेले	१३५
शिक्षा की दशा	१३८
वर्तमान साहित्यिक प्रगति	१४०
साहित्यिक संस्थाएँ	१४९
पत्र-पत्रिकाएँ	१४२
प्रमुख साहित्यिक	१४२
उपसंहार	१४६
परिशिष्ट	१४८

चित्र सूची

चित्र नाम	पृष्ठ जिसके सामने छपा है
मथरा नगर का मानचित्र	आरम्भ में
१. हल-मूसलधारी बलराम (शुङ्ग काल)	६८
२. कालियनाग का दमन करते हुए श्री कृष्ण (गुप्तकाल) ,,	
३. दही का भांड लिए हुए गोपी (कुषाण काल)	,,
४. अंगूरका गुच्छा और मधुपात्र लिए सुन्दरी (कुषाणकाल) बोदिका-स्तंभ पर स्नान के बाद वस्त्र पहनती हुई स्त्री	६६
५. कुषाणकालीन स्त्री के सामने और पीछे का चित्र	६६
६. मौर्यकालीन यज्ञ-प्रतिमा	६५
७. गुप्त कालीन सुन्दर बुद्ध-मूर्ति	,,
८. तोंद वाले कुबेर (कुषाण काल)	,,
९. विश्रांत घाट	६४
१० सती बुर्ज	६४
११ किले तथा जुम्मा मस्जिद का अवसे १६० वर्ष पहले लिया गया चित्र	१२८
१२. किले का वर्तमान दृश्य	,,
१३. भगवान् द्वारकाधीश	१२९
१४. श्री कृष्ण जन्मस्थान का वर्तमान रूप	१२९
१५. मथुरा के पुरातत्त्व संग्रहालय का भीतरी दृश्य	१३०
१६. स्वामीघाट	१३१
१७. गीता मन्दिर तथा गीता स्तंभ	१३१

मथुरा-परिचय

आध्यात्म १

मथुरा की स्थापना तथा उसका प्राचीन भौगोलिक विवरण



मथुरा की गणता भारत के उन इन्द्र-गिने नगरों में है जो एक दीर्घ काल से इस देश के प्रमुख सांस्कृतिक केंद्र रहे हैं। भारतीय धर्म, दर्शन, कला एवं साहित्य के विकास में मथुरा ने महत्वपूर्ण योग दिया है। इस नगर का इतिहास, जो अबसे कई हजार वर्ष पहले से आरंभ होता है, बड़ा ही रोचक है। इसका संक्षिप्त दिग्दर्शन नीचे कराया जाता है।

मथुरा का नामकरण

वाल्मीकि-रामायण, महाभारत, हरिवंश, विष्णुपुराण अदि प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में मथुरा के पुराने नाम मधुपुर, मधुपुरी और, विशेषकर, मधुरा मिलते हैं। इन तीनों नामों में

‘मधु’ शब्द पाया जाता है, जो एक व्यक्ति का नाम है। इस मधु के संबंध में आगे विस्तार से वर्णन किया जायगा। ‘मधुरा’ का शाब्दिक अर्थ है ‘मीठी’ वा ‘आनंददायिनी’। इसी मधुरा से ‘मथुरा’ शब्द बना, जिसके अर्थ हैं ‘मथने वाली’ (संभवतः पापों को मथने वाली—‘मथ्यते पापराशिर्यया सा मथुरा’ अर्थात् जो पापों के समूह का मथन करने वाली हो, वह मथुरा)।

बौद्ध साहित्य में भी मथुरा नगर का प्राचीन नाम मधुरा मिलता है। अट्टकथा (पृ० ११८) नामक ग्रंथ में ‘उत्तरमधुरा’ का उल्लेख है। वास्तव में प्राचीन भारत में दो मथुरा थीं—एक उत्तर में और दूसरी दक्षिण भारत में। उत्तर वाली मथुरा वर्तमान मथुरा को सूचित करती है, जो शूरसेन जनपद की राजधानी हुई। दक्षिण मथुरा पांड्यदेश की राजधानी थी। इसका वर्तमान नाम ‘मदुरा’ है। यह भी प्राचीन काल में एक प्रसिद्ध नगरी थी। हरिषेण-रचित वृहत्कथा कोश में लिखा है कि पांड्य महादेश में दक्षिण मथुरा थी और वह धनधान्य से संपन्न थी—

“अथ पांड्य महादेशे दक्षिणा मथुरा उभवत् ।
धनधान्य समाकीर्णा……” (कथानक ७, १)

उत्तर वाली मथुरा को हरिषेण ने भरतक्षेत्र में स्थित बताया है—

“अथास्ति भरतक्षेत्रे मथुरा नगरी पुरा ।” (कथा० २, १)
यहाँ ‘भरतक्षेत्र’ आर्यवर्त या उत्तर भारत का सूचक है।

इन उल्लेखों से स्पष्ट है कि इन दोनों प्रसिद्ध नगरों का एकही नाम 'मधुरा' होनेसे लोगों को समझने में भ्रम न होजाये इसलिये इसके पहले क्रमशः 'उत्तर' और 'दक्षिण' शब्द लगा दिये जाते थे। जैन साहित्य के पुरातन प्रबन्ध संग्रह नामक ग्रंथ में एक मनोरंजक उपाख्यान दिया है जिसमें यह बताया गया है कि दो मथुरा कैसे होगीं। यह कथा इस प्रकार दी हुई है —

एक बार प्रतिष्ठानपुर (दक्षिण पैठन) के राजा नरवाहन ने अपने मन्त्री से पूछा "मेरा आधिपत्य कहाँ-कहाँ नहीं है ?" मन्त्री ने जवाब दिया— "महाराज, और तो सभी जगह है, केवल मथुरा में नहीं है ।" यह सुनते ही राजा ने मथुरा-विजय करने के लिये अपनी सेना भेजने की आज्ञा देदी। राजा के मंत्रियों ने कुछ फौज उत्तर की ओर और कुछ दक्षिण की ओर भेज दी। उत्तर की ओर का जो प्रदेश जीता गया वह 'उत्तर मथुरा' तथा दक्षिण की ओर का 'दक्षिण मथुरा' कहलाया ।

इस कथा में ऐतिहासिक तथ्य का अभाव होते हुए भी इससे इतना तो कहा जा सकता है कि प्राचीन काल में उत्तर और दक्षिण मथुरा एक दूसरे से भिन्न थीं और दोनों ही प्रसिद्ध नगरियाँ थीं ।

मथुरा नगर की स्थापना

अब हम उत्तर मधुरा या मथुरा की स्थापना के संबंध में चर्चा करेंगे ।

रामायण तथा पौराणिक साहित्य में प्राप्त उल्लेखों से

पता चलता है कि सबसे प्राचीन नगर जो मधु के द्वारा [या उसके पुत्र लवण-द्वारा] बसाया गया था वह मधु के नामपर मधुपुर या मधुपुरी कहाया। इसके आस-पास का घना वन 'मधुवन' कहलाता था। रामायण (उत्तर कांड, ६२, १७ तथा ६८, ३) से यह भी ज्ञात होता है कि यह नगर यमुना के पश्चिमी तट पर बसा हुआ था। जब अयोध्या से श्रीराम के भाई शत्रुघ्न लवण को जीतने के लिये मधुपुरी चले तब उन्हें अपनी यात्रा में पहले गंगा पार करनी पड़ी और फिर यमुना। तब वे मधुपुरी के फाटक तक पहुंचे। इस मधुपुरी की पहचान आधुनिक महोली गाँव से की गई है, जो वर्तमान मथुरा नगर से लगभग साढ़े तीन मील दक्षिण-पश्चिम है। इसे मधुवन भी कहते हैं। वास्तव में यह वन अब बहुत ही छोटा रह गया है। आधुनिक ब्रज-यात्रा मथुरा नगर से चलकर सबसे पहले मधुवन-महोली आती है। फिर यहाँ से अन्य स्थानों को जाती है।

जैसा ऊपर कह चुके हैं, 'मधुपुरी' नाम मधु के नाम पर पड़ा। यह मधु कौन था, इसके संबंध में विद्वानों के विभिन्न मत हैं। कुछ लोग इसे मधु-कैटभ वाला मधु दैत्य समझते हैं, परन्तु यह भूल है। मधुपुरी वाले मधु की जो कथा रामायण आदि ग्रंथों में मिलती है उससे पता चलता है कि वह लोला नामक असुर का ज्येष्ठ पुत्र था और बड़ा ही धर्मात्मा, बुद्धिमान एवं परोपकारी था। उसने शिव की तपस्या बहुत दिनों तक एकाग्र चित्त से की। शिव ने अंत में प्रसन्न होकर उसे एक त्रिशूल दिया और कहा—“जब तक तुम देव-

ताओं और विप्रों का विरोध न करोगे तब तक यह शूल तुम्हारे पास रहेगा और इसके रहने से तुम्हें कोई जीत न सकेगा।” मधु ने शिवजी से प्रार्थना की कि जहाँ उन्होंने इतनी कृपाकी है वहाँ इतना और अनुग्रह करें कि वह त्रिशूल सदा के लिये उसके बंशजों के पास बना रहे। रुद्र भगवान् ने मधु की इस याचना को पूरी तरह तो स्वाक्षर नहीं किया पर उससे इतना कहा—“यह अब तुम्हारे एक पुत्र के पास रहेगा और जबतक वह इसे धारण किये रहेगा तब तक कोई उसे मार नहीं सकेगा।”

मधु की कुम्भीनसी नाम की स्त्री से लवण नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। यह अपने पिता के स्वभाव के बिलकुल विपरीत था और लोगों को अनेक प्रकार से कष्ट पहुँचाता रहता था। मधु इस कारण बहुत दुःखी रहता था। उसके मरने के बाद लवण को अपने अत्याचार बढ़ाने की पूरी स्वतन्त्रता मिल गई। ऋषि-मुनियों को वह बहुत त्रास देता था। अन्त में कुछ ऋषियों ने अयोध्या जाकर श्री रामचन्द्रजी को सब बातें बताईं और उनसे प्रार्थना की कि वे शीघ्र लोगों को लवण के अत्याचारों से छुटकारा दिलाने का प्रयत्न करें। श्री राम ने शत्रुघ्न को अभिषिक्त कर उन्हें मधुवन के लिये रवाना किया। शत्रुघ्न ने वहाँ पहुँच कर अन्त में लवण का संहार किया। (रामायण, उत्तर० सर्ग ६१--६६)।

वाल्मीकि-रामायण के उपर्युक्त वर्णन से ज्ञात होता है कि मधु एक धर्मात्मा और नीतिवान् असुर था। पुराणों में भी प्रायः मधु के लिये दैत्य, दानव या असुर शब्दों का

प्रयोग हुआ है, * परंतु उसके अत्याचारी होने के संबंध में बहुत कम स्थानों में उल्लेख मिलते हैं। कहीं—कहीं लवण और मधु में भ्रम होजाने के कारण मधुको अत्याचारी कहा गया है। परंतु ठीक यही जान पड़ता है कि लवण, न कि मधु, लोगों को त्रास पहुंचाने वाला था। यदि मधु स्वयं अत्याचारी होता तो ऋषि लोग उसकी भी शिकायत श्री राम से करते, परंतु उन्होंने उनसे मधु की प्रशंसा की और लवण की निंदा। इससे प्रतीत होता है कि मधु अच्छे स्वभाव एवं अच्छे व्यवहार वाला व्यक्ति था।

अब प्रश्न यह है कि मधु किस वंश का था। कुछ विद्वानों का यह मत है कि वह यदुवंश का था और उसकी ओरसे लवण मधुवन का शासन करता था। पौराणिक सूचियोंमें यदुवंश की ४४ वीं पीढ़ी में हुए एक मधु का नाम अवश्य मिलता है, पर, जैसा हम अगले अध्याय में बतावेंगे, यह मधु श्री राम के समय से बहुत पहले हुआ था। अन्य विद्वान् मधु को चंद्रवंशी किसी अन्य शाखा का मानते हैं और कहते हैं कि चंद्रवंशी लवण और सूर्यवंशी श्री राम में, विभिन्न वंशों का होने के कारण, युद्ध होना स्वाभाविक था। परंतु यथेष्ट पुष्ट प्रमाणों के अभाव में मधु को यदुवंश का या चंद्रवंश की किसी अन्य

* उदाहरणार्थ—

“मधुनामि महानासीद्वानवो युधि दुर्ज्जयः” ५

[हरिवंश पु० १, ५४, २२]

“पुनश्च मधुसंज्ञेन दैत्योनाधिष्ठितं यतः ।

ततो मधुवनं नाम्ना ख्यातमन्त्र महीतले ॥”

[विष्णु पु० १, १२, ३]

शाखा का मानना ठीक नहीं दिखाई पड़ता। यदि वह सचमुच चंद्रवंश का था और उसके कर्म भी अच्छे थे तो कोई कारण नहीं दिखाई देता कि फिर पुराणों आदि में उसे दैत्य, दानव और असुर क्यों कहा जाता। इन विशेषणों के होने से अधिक युक्तिसंगत यही प्रतीत होता है कि मधु द्राविड़ जाति की किसी शाखा का था। मोहेंजोदड़ो, हरप्पा, नाल आदि तथा नर्मदा घाटी के प्राचीन स्थानों की खुदाई से द्राविड़ सभ्यता के जो अवशेष प्राप्त हुए हैं उनसे पता चलता है कि ईश्वी सन् से लगभग ३००० वर्ष पहले या इससे भी कुछ पूर्व द्राविड़ लोग बड़े नगरों का निर्माण करने लगे थे, जिनमें सभ्य जीवन के लिये उपयुक्त प्रायः सभी सुविधाओं का समावेश था। मधु की नगरी मधुपुरी के जो वर्णन प्राचीन साहित्य में मिलते हैं उनसे ज्ञात होता है कि उसका स्थापत्य काढ़ी बढ़ा--चढ़ा था। शत्रुघ्न भी उस रम्यपुरी को देख कर चकित हो गये और अनुमान करने लगे कि वह शायद देवों के द्वारा निर्मित हुई हो। प्राचीन वैदिक साहित्य में द्राविड़ों के विशाल तथा मजबूत किलों एवं मकानों के उल्लेख पाये गये हैं। वेदां में द्राविड़ों के लिये असुर आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है। अतः इसमें आश्र्वय की बात नहीं यदि मधु को परवर्ती साहित्य में असुर या दानव कहा गया है।

पुराणों के अनुसार शत्रुघ्न ने लवण का वध करने के बाद जङ्गल (मधुवन) को साफ करवाया और 'मधुरा' नामक पुरी को बसाया—

“हत्वा च लवणं रक्षो मधुपुत्रं महाबलम् ।
शत्रुघ्नो मधुरां नाम पुरीं यत्र चकारवै ॥”

(विष्णु पु० १, १२, ४)

जङ्गल के कटने तथा पुरी का संस्कार करने से नगर एवं जनपद की शोभा बहुत बढ़ गई—

“छित्वा वनं तत्सौमित्रिः निवेशं सोऽभ्यरोचयत् ।

भवाय तस्य देशस्य पुर्याः परमधर्मवित् ॥

(हरिवंश १, ५४, ५५)

ऐसा प्रतीत होता है कि मधुवन और मधुपुरी में निवास करने वाले लवण के अधिकांश अनुयायिओं को शत्रुघ्न ने समाप्त कर दिया। शेष भयभीत होकर अन्यत्र चले गये होंगे। तभी शत्रुघ्न ने उस पुरीको ठीक ढंग से बसाने की बात सोची होगी। संभवतः शत्रुघ्न ने पुरानी नगरी (मधुपुरी) को नष्ट नहीं किया। उन्होंने उससे दूर एक नई बस्ती बसाने की भी कोई आवश्यकता न समझी होगी। प्राचीन पौराणिक उल्लेखों तथा रामायण के वर्णनसे यही प्रकट होता है कि उन्होंने जङ्गल को साफ करवाया तथा प्राचीन मधुपुरी को एक नये ढङ्ग से पुनः आबाद कर उसे सुशोभित किया। रामायण में देवों से वर माँगते हुए शत्रुघ्न कहते हैं—

“इयं मधुपरी रम्या मधुरा देवनिर्मिता ।

निवेशं प्राप्नुयाच्छीघ्रमेष मैऽस्तु वरः परः ॥”

(उत्तर०, ७०, ५)

अर्थात्—‘हे देवगण, मुझे यह वरदान दीजिए कि यह सुन्दर मधुपुरी या मधुरा नगरी, जो ऐसी ज़ैचती है मानो देवताओं द्वारा बनाई गई हो, शीघ्र ही आबाद हो जाय।’ देवताओं ने ‘एवमस्तु’ कहा और कुछ समय बाद पुरी आबाद हो गई। बारह वर्ष के अनंतर इस मधुरा नगरी तथा इसके आस पास के प्रदेश की काया ही पलट गई।

प्राचीन मथुरा का वर्णन

शत्रुघ्न द्वारा शासित पुरानी मथुरा नगरी के जो वर्णन प्राचीन साहित्य में मिलते हैं उनसे ज्ञात होता है कि यह पुरी यमुना के तट पर अर्धचन्द्राकार बसी हुई थी। उसके चारों ओर नगर--दीवाल थी। यथा--स्थान अनेक उद्यान और उपवन थे। खेत धान्य संयुक्त थे, समय पर जल-वृष्टि होती थी। इस पुरी के निवासी रोगमुक्त और वीर थे। वे अनेक प्रकार के सुन्दर मकानों में रहते थे और विविध वस्त्राभूषण धारण करते थे। उनके पास बड़ी संख्या में हाथी, घोड़े, रथ आदि थे। बाजारमें सभी प्रकार का क्रय-विक्रय होता रहता था। इससमृद्ध नगरी में व्यापार के लिये विदेशी लोग भी आते-जाते रहते थे। नगरी के रहने वाले सभी स्त्री--पुरुष प्रसन्नचित्त दिखाई पड़ते थे।

हरिवंश पुराण (पर्व १, अ० ५४) से प्राचीन मथुरा संबंधी कुछ अंश उद्धृत किया जाता है—

“सा पुरी परमोदारा साटप्राकारतोरणा ।
 स्फीता राष्ट्रसमाकीर्णा समृद्धबलवाहना ॥ ५७ ॥
 उद्यान वनसंपन्ना सुसीमा सुप्रतिष्ठिता ।
 प्रांशुप्राकारवसना परिखाकुलमेखला ॥ ५८ ॥
 चलाट्टालककेयूरा प्रासादवरकुण्डला ।
 सुसंवृतद्वारवती चत्वरोद्गारहासिनी ॥ ५९ ॥
 अरोगवीरपुरुषा हस्त्यश्वरथसंकुला ।
 अर्द्धचन्द्रप्रतीकाशा यमुना तीर शोभिता ॥ ६० ॥
 पुण्यापणवती दुर्गा रत्नसंचय गर्विता ।

द्वेत्राणि सस्यवंत्यस्याः काले देवश्च वर्षति ॥ ६१ ॥

नरनारी प्रमुदिता सा पुरीस्म प्रकाशते ।”

(इन श्लोकों का भावाथे ऊपर दिया जा चुका है ।)



पुरानी नगरी का विस्तार

प्राचीन मथुरा नगरी का विस्तार कितना था, अर्थात् वह किस स्थान से लेकर कहाँ तक आबाद थी, यह निश्चिन रूप से नहीं बताया जा सकता । जैसा कि उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है, पुरानी मथुरा यमुना नदी के तट पर बसी थी और उसका आकार अष्टमी के चन्द्रमा--जैसा मालूम पड़ता था । आधुनिक अन्वेषणों के आधार पर शत्रुघ्न का समय अब से लगभग चार हजार वर्ष पूर्व माना जा सकता है । यमुना नदी का प्रवाह इस दीर्घ काल की अवधि में कई बार बदला होगा । शत्रुघ्न के समय में नदी की धारा उस स्थान के पास से बहती रही होगी जिसे अब महोली कहते हैं । वर्तमान मथुरा नगरी और महोली के बीच बड़ी संख्या में पुराने टीले दिखाई पड़ते हैं । इन टीलों से ईस्वी सन् से कई शती पूर्व तक के अवशेष प्राप्त हो चुके हैं, जिनसे इस कथन की पुष्टि होती है कि पुरानी मथुरा इधर ही आबाद थी । यदि इन टीलों की पूरी तरह से छानबीन की जाय तो बहुत संभव है कि प्राप्त अवशेषों से भी बहुत पहले की वस्तुएँ उपलब्ध हो जायँ । व्यवस्थित खुदाई होने पर संभवतः हम यह भी जान सकेगे कि शत्रुघ्न के समय से लेकर अर्वाचीन समय तक विभिन्न मुख्य कालों में मथुरा नगरी की वस्ती किन-किन स्थानों पर थी ।

यमुना की धारा के बदलने के साथ तथा राजनैतिक परिवर्तनों के कारण नगरी की बसावट में भी परिवर्तन आवश्यक हो गये होंगे। आधुनिक महोली गाँव की परली तरफ एकाध टीले को छोड़ कर पुराने टीले नहीं दिखाई पड़ते, जब कि गाँव के पूर्व की ओर उनका ताँता मथुरा नगर तक वरावर दिखाई पड़ता है। अतः हम कह सकते हैं कि पुरानी नगरी महोली के पूर्व की ओर ही बढ़ती गई।

उपर्युक्त कथन की पुष्टि में पुराणों के भी कुछ प्रमाण यहाँ दिये जा सकते हैं। वराह पुराण (अ० १६५, २१) से ज्ञात होता है कि पहले गोवर्धन पर्वत और यमुना नदी के बीच मथुरा नगरी बसी हुई थी। ऐसी स्थिति तो अब भी है पर पहले शायद यमुना की धारा के अधिक पश्चिम की ओर बहने के कारण गोवर्धन और यमुना के बीच इतनी दूरी न रही होगी जितनी कि अब है। हरिवंश (१, ५५, ३६) से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि गोवर्धन पर्वत मथुरा से दूर नहीं था—

“गिरिर्गोवर्धनो नाम मथुरायास्त्वदूरतः ।”



शूरसेन, मथुरा या ब्रज जनपद

१. शूरसेन

प्राचीन मथुरा नगरी के सभीपस्थ प्रदेश को जनपद या राज्यकी संज्ञा कब प्राप्त हुई, यह प्रश्न विचारणीय है। यह भी जानना आवश्यक है कि इस जनपद का नाम क्या रखा गया और वह किस आधार पर। अब तक जो प्राचीन साहित्यिक

प्रमाण उपलब्ध हुए हैं उनसे पता चलता है कि जनपद का प्रारंभिक नाम 'शूरसेन' था, जिसकी मथुरा राजधानी थी। जैसा हम दूसरे अध्याय के अंत में बतावेंगे, बौद्ध और जैन ग्रंथों से ज्ञात होता है कि ई० पूर्व छठी शती के कुछ पहले उत्तर भारत में सोलह ग्राहान जनपद थे और उनमें से एक शूरसेन भी था। इस शूरसेन जनपद की राजधानी मथुरा लिखी है। ई० पू० दूसरी शती की लिखी हुई मनुस्मृति में भी जनपद का उल्लेख शूरसेन नाम से हुआ है—

"कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पञ्चालाः शूरसेनकाः ।

एष ब्रह्मर्षिदेशो वै ब्रह्मावर्तादनन्तरः ॥"

(मनु०, २, १६)

मनुस्मृति से यह भी ज्ञात होता है कि उस समय 'ब्रह्मावर्त' के अंतर्गत प्रदेश तथा 'ब्रह्मर्षिदेश' के उपर्युक्त जनपद अन्य प्रदेशों के लिये आदर्श-रूप समझे जाते थे। यहाँ के निवासियों का आचार-विचार बहुत श्रेष्ठ एवं मान्य था (मनु०, २, १८, २०)। जैसा हम आगे देखेंगे, कुरुक्षेत्र, मत्स्य तथा पंचाल जनपद शूरसेन प्रदेश के क्रमशः उत्तर, पश्चिम तथा पूर्व की ओर स्थित थे।

ऐसा पतीत होता है कि शूरसेन जनपद की यह संज्ञा लगभग ईस्वी सन् के प्रारम्भ तक जारी रही। जब यहाँ विदेशी शक ज़त्रों एवं कुषाणों का प्रभुत्व हुआ संभवतः तभी से जनपद की संज्ञा 'मथुरा' हो गई। ईस्वी सन् कै प्रारम्भ से लेकर बाद तक के जो अभिलेख मिले हैं उनमें मथुरा

नाम ही मिलता है, शूरसेन नहीं। इस समय से साहित्यिक ग्रंथों में भी पूर्यः मथुरा नाम ही मिलने लगता है। इस परिवर्तन का मुख्य कारण यही हो सकता है कि तत्कालीन मथुरा नगर इतनी पूसिद्धि प्राप्त कर गया था कि लोग जनपद या पूर्वेश के नाम की भी मथुरा के नाम से पुकारने लगे हों गे और धीरे-धीरे जनपद का शूरसेन नाम जनसाधारण के स्मृति-पटल से उतर गया होगा।

अब हम प्रारम्भिक जनपद के 'शूरसेन' नाम पड़ने के कारण पर विचार करेंगे। इस नाम (शूरसेन) से प्रकट है कि यह किसी व्यक्ति का सूचक है, न कि किसी स्थान, नदी, पर्वत आदि का। व्यक्ति-विशेष के नाम पर किसी नगर या जनपद के नामकरण की प्रथा भारत में ही नहीं अन्य देशों के इतिहास में भी पाई जाती है। हमारे देश में तो अधिकांश स्थानों के नाम ऐसे ही हैं। वंशों की भी संज्ञा प्रतापी पूर्व पुरुषों के नाम पर रखने की प्रथा प्राचीन भारत में थी।

अब देखना है कि जनपद की शूरसेन संज्ञा किस व्यक्ति विशेष के नाम पर आरूढ़ हो गई। पुराणों आदि में दी हुई दांशपरंपराओं की सूचियों को देखने से पता चलता है कि शूर या शूरसेन नाम के कई व्यक्ति प्राचीन काल में थे। इनमें उल्लेखनीय तीन हुये हैं—१. कार्तवीर्य अर्जुन के पुत्र शूरसेन, २. शत्रुघ्न के छाटे पुत्र शूरसेन तथा ३. श्री कृष्ण के पितामह शूर।

इनमें से प्रथम शूरसेन का प्राचीन मथुरा से कोई संबंध नहीं मिलता। श्री कृष्ण के पितामह का नाम शूर था, न

कि शूरसेन*। इनके नाम से जनपद की संज्ञा का आविर्भाव नहीं माना जा सकता। इसका कारण यह है कि प्राचीन साहित्यिक उल्लेखों के अनुसार जनपद का रूप शत्रुघ्न के समय में या उनकी मृत्यु के ठीक बाद ही स्थिर हो चुका था। शत्रुघ्न कम से कम कम बारह वर्ष तक मथुरा नगरी एवं उसके आस-पास के प्रदेश के शासक रहे। बहुत संभव है कि उन्होंने अपनी जीवितावस्था में ही अपने छोटे पुत्र शूरसेन के नाम पर जनपद का 'शूरसेन' नामकरण कर दिया हो। वाल्मीकि-रामायण में इस ओर कुछ अस्पष्ट संकेत पाया जाता है। † हरिवंश में शत्रुघ्न के बाद उनके पुत्र शूरसेन का उल्लेख है, जिन्होंने मथुरा प्रदेश पर अपना आधिपत्य रखा (हरि०, १, ५४, ६२)। शत्रुघ्न-पुत्र शूरसेन के समय तथा श्री कृष्ण के पितामह शूर के समय में लगभग चार सौ वर्ष का अंतर आता है, जब कि जनपद का शूरसेन नाम पिछले शूर के बहुत पहले आरूढ़ हो गया जान पड़ता है। अतः युक्ति संगत यही प्रतीत होता है कि जनपद की शूरसेन संज्ञा शत्रुघ्न के पुत्र शूरसेन के नाम पर पड़ी, न कि श्री कृष्ण के पितामह शूर के नाम पर।

* इसीलिये हरिवंश, विष्णु आदि पुराणों तथा परवर्ती संस्कृत साहित्य में श्री कृष्ण के लिये 'शौरि' शब्द का प्रयोग भी मिलता है।

† "भविष्यति पुरी रम्या शूरसोना न संशयः ।"

(उत्तर ०,७०,६)

"स पुरा दिव्यसंकाशो वर्षे द्वादशमे शुभे ।

निविष्टः शूरसोनानां विषयश्चा कुतोभयः ॥" (७०,६)

२. मथुरा

जैसा हम उपर कह चुके हैं, जनपद का शूरसेन नाम बहुत समय तक प्रचलित रहा। प्राचीन वैदिक, वौद्ध एवं जैन साहित्य में जनपद की पुरानी संज्ञा शूरसेन ही मिलती है। परन्तु लगभग इस्वी सन् के प्रारम्भ से जनपदका नाम राजधानी मथुरा के ही नाम पर अधिक प्रसिद्ध हो गया, यहाँ तक कि धीरे-धीरे लोग शूरसेन जनपद का अभिप्राय ‘मथुरा’ शब्द द्वारा ही व्यक्त करने लगे। इस प्रकार मथुरा से न केवल नगर का अर्थ समझा जाने लगा अपितु उसके आसपास के प्रदेश का भी। जैसा पीछे कहा गया है, संभवतः क्षत्रप-कुषाण कालीन मथुरा की अभूतपूर्व उन्नति ही इस परिवर्तन के मूल में थी।

प्राचीन शूरसेन या मथुरा जनपद का प्रारम्भ में कितना विस्तार था और कालक्रम के अनुसार उसमें क्या हेर-फेर होते गये, इसके संबन्ध में हम निश्चित रूप से नहीं कह सकते, क्योंकि हमें प्राचीन साहित्य में कोई ऐसे प्रमाण नहीं मिलते जिनके आधार पर विभिन्न कालों में इस जनपद की लम्बाई-चौड़ाई का ठीक पता लग सके। साहित्यिक उल्लेखों से जो थोड़ा बहुत पता चलता है वह यह है कि प्राचीन शूरसेन या मथुरा प्रदेश के उत्तर में कुरुदेश (आधुनिक दिल्ली और उसके आस पास का प्रदेश) था, जिसकी राजधानी इन्द्रप्रस्थ तथा हस्थिनापुर थी। दक्षिण में चेदि राज्य (आधुनिक बुँदेलखंड तथा उसके समीप का कुछ भाग) था, जिसकी राजधानी का नाम था सूक्तिमती नगर। पूर्व में पंचाल राज्य (आधुनिक रुहेलखंड) था, जो दो भागों में बँटा हुआ था—उत्तर पंचाल

तथा दक्षिण पंचाल । उत्तर वाले राज्य की राजधानी अहिंच्छत्रा (बरेली ज़िले में) और दक्षिण वाले की कांपिल्य (आधु० कंपिल, ज़ि० फरूखाबाद) थी । शूरसेन के पश्चिम वाला व ला जनपद मत्स्य (आधुनिक अलवर रियासत तथा जयपुर का पूर्वी भाग) था । इसकी राजधानी विराट नगर (आधु० वैराट, जयपुर रियासत में) थी ।

इस प्रकार यद्यपि हमें प्राचीन शूरसेन या मथुरा प्रदेश के चारों ओर स्थित जनपदों का पता चल जाता है पर मथुरा राज्य की निश्चित सीमा क्या थी, यह नहीं ज्ञात होता । कुषाणों के शासन काल में मथुरा राज्य का विस्तार संभवतः कुछ बढ़ा होगा । ईस्वी छठी शती के पूर्वार्ध में जब प्रसिद्ध चीनी यात्री हुएनसांग मथुरा आया तब उसने लिखा है कि उस समय मथुरा राज्य का विस्तार ५,००० ली (=लग० ८३३ मील के घेरे में) था । इससे ज्ञात होता है कि तत्कालीन मथुरा राज्य में वर्तमान मथुरा-आगरा ज़िलों के अतिरिक्त भरतपुर तथा धौलपुर की रियासतें और ग्वालियर रियासत का लगभग आधा उत्तरी भाग भी शामिल रहा होगा । परन्तु सातवीं शती के बाद से मथुरा राज्य का विस्तार घटता गया । इसका प्रधान कारण यह था कि इसके पूर्व का कान्यकुञ्ज (या कन्नोज) राज्य बरावर उन्नति करता जा रहा था । इसकी राजधानी कन्नोज थी । कन्नोज न केवल प्रसिद्ध शासक हर्षवर्धन की राजधानी रही अपितु मौखरी, गुर्जर प्रतीहार तथा गढ़वाल दांशी शासकों ने भी इसे ही अपनी राजधानी बनाया । कन्नोज राज्य की वृद्धि के साथ मथुरा राज्य की सीमाएँ अवश्य प्रभावित हुई होंगी ।

३. ब्रज (ब्रज)

शूरसेन या मथुरा जनपद ही कालींतर में 'ब्रज' कहलाया। प्राचीन साहित्य में जनपद या राज्य के अर्थ में 'ब्रज' का प्रयोग नहीं मिलता। वह या तो गोचर भूमि या पशुओं के बाड़े या बड़े वन के अर्थ में प्रयुक्त मिलता है। ऋग्वेद (५, ६, ७,), यजुर्वेद (अ० १६), रामायण, महाभारत, हरिवंश तथा अन्य प्राचीन पुराणों में ब्रज शब्द का प्रयोग प्रायः इन्हीं में से किसी एक अर्थ में मिलता है।

ई० चौदहवीं शती के प्रारम्भ से मयुरा प्रदेश में कृष्ण भक्ति की एक नई लहर उठी। इस भक्ति को जनसाधारण तक पहुँचाने के लिये यहां की शौरसेनी प्राकृत से एक कोमल-कांत भाषा का आविर्भाव हुआ। इसी समयके आसपास मथुरा जनपद की, जिसमें अनेक वन-उपवन एवं पशुओंके लिये बड़े ब्रज या चरागाह थे, 'ब्रज' (भाषा में 'ब्रज') संज्ञा विशेष रूप से प्रचलित हुई होगी। इस ब्रज प्रदेश में आविर्भूत नई भाषा का नाम स्वभावतः 'ब्रज' रखा गया होगा। इस कोमल भाषा के माध्यम द्वारा ब्रज ने कालींतर में एक ऐसे साहित्य की सृष्टि की जिसने अपने माधुर्य--रस से सारे भारत को आप्लावित कर दिया। ब्रज की संस्कृति एक अत्यन्त मनोहर रूप में लोक के समक्ष आई और उसने अपनी सरसता एवं जन-हित-कारी भावुकता से भारतीय जनता को प्रभावित कर दिया।

भाषा एवं संस्कृति के प्रसार के साथ-साथ ब्रज जनपद का विस्तार बढ़ता गया। ई० सोलहवीं शती में 'ब्रज-यात्रा' का प्रारंभ किया गया। इस यात्रा की लंबाई पौराणिक वर्णनों के

आधार पर चौरासी कोस रखी गई है और इसमें वे सभी मुख्य स्थल आ जाते हैं जिनका श्री कृष्ण की लीलाओं के साथ संबंध बताया जाता है। अठारहवीं शती के अंत तक ब्रज-भाषा एवं संस्कृति का प्रसार वर्तमान मथुरा ज़िले की सीमाओं के चारों ओर काफी बढ़ गया।

इस प्रकार हमने ऊपर देखा कि केसे सर्वप्रथम 'शूरसेन' जनपद का नामकरण हुआ और फिर किस तरह वही जनपद 'मथुरा' तथा कालांतर में 'ब्रज' या 'ब्रज' कहलाया ॥ । यद्यपि वर्तमान काल में ब्रज एक पृथक राजनैतिक इकाई के रूप में नहीं है तो भी भाषा एवं संस्कृति की दृष्टि से इसमें वे सभी तत्व विद्यमान हैं जो एक भारतीय 'जनपद' के लिये अपेक्षित हैं ।



* ब्रज के संबंध में विस्तृत विवरण मेरी शीघ्र प्रकाशित होने वाली पुस्तक 'ब्रज दर्शन' में मिलेगा ।

अध्याय २

मथुरा का इतिहास

[प्राचीनतम काल से लेकर लगभग ई० पू० ६०० तक]

१. श्री कृष्ण से पहले का इतिहास



यद्यपि मथुराका इतिहास बहुत प्राचीनकाल से आरंभ होता है तथापि ईस्वी पूर्व छठी शती के पहले का क्रमबद्ध इतिहास बहुत ही अपूर्ण रूप में प्राप्त हो सका है। इसका कारण पर्याप्त ऐतिहासिक सामग्री का अभाव है। मथुरा से अब तक पुरातत्त्व--संबंधी अवशेष या अन्य ऐसे प्रमाण नहीं मिल सके हैं जिनके आधार पर हम ई० पू० ६०० के पहले के समय का एक प्रामाणिक इतिवृत्त उपस्थित कर सकें। इस काल का इतिहास जानने के लिये हमारे पास जो साधन हैं वे केवल साहित्यिक सामग्री तक सीमित हैं। इस साहित्यिक सामग्री में मुख्यतया वे पौराणिक अनुश्रुतियाँ हैं जो अनेक पुराणों *

* प्राचीन पुराण ग्रंथ जिनमें मथुरा-संबंधी वर्णन विशेष रूप से मिलते हैं हरिवंश मत्स्य, ब्रह्म, विष्णु तथा भागवत हैं। परवर्ती पुराणों में वराह, पश्च तथा ब्रह्मवैवर्त उल्लेखनीय हैं।

में प्राप्त होती हैं। दुर्भाग्य से विभिन्न पुराणों में दी हुई अनु-श्रुतियों में कहीं-कहीं बड़ा विपर्यय मिलता है, जिससे वास्तविक तथ्यों को छाँटने में काफी अड़चन का सामना करना पड़ता है।

हमने यहाँ ई० पू० ६०० से पहले के लम्बे समय को तीन भागों में बाँट दिया है—१. प्राचीनतम काल से लेकर श्रीकृष्ण (जन्म लग० ई० पू० १५००) के पहले तक; २. श्री कृष्ण का समय, अर्थात् लग० ई० पू० १५०० से महाभारत युद्ध (लग० ई० पू० १४००) तक; ३. महाभारत-युद्ध के बाद से लगभग ई० पू० ६०० तक। महाभारत-युद्ध का जो समय यहाँ माना गया है वह वर्तमान ऐतिहासिक अन्वेषणों के आधार पर ही। शतपथ ब्राह्मण, वंश ब्राह्मण, वृहदारण्यक उपनिषद् आदि ग्रंथों में दी हुई राज-वंशावलियों एवं गुरु-शिष्य-परम्परा सम्बन्धी वर्णनों की पूरी विवेचना करने के बाद कई आधुनिक विद्वान् इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि महा-भारत-युद्ध ई० पू० १४०० के ही लगभग हुआ था। हो सकता है कि इस संबंध में अभी अधिक गहरी ज्ञानवीन करने पर इस काल में कुछ परिवर्तन करने की आवश्यकता पड़े। परन्तु जब तक इसके लिये यथेष्ट पुष्ट प्रमाण नहीं उपलब्ध होते तब तक उपर्युक्त तिथि को ही मानना समीचीन होगा।

पौराणिक उल्लेखों से पता चलता है कि प्राचीन मथुरा पर चन्द्रवंशी ज्ञात्रियों की यदुवंशी शाखा का बहुत समय तक अधिकार रहा। इस चंद्रवंश का संक्षिप्त इतिहास जान लेना आवश्यक है। इसका प्रादुर्भाव पुरुरवा ऐल से हुआ, जिसके कारण इसे 'ऐल वंश' भी कहते हैं। इस वंश में राजा ययाति बहुत प्रसिद्ध हुए। वे आर्यवर्त के सर्वप्रथम चक्रवर्ती शासक माने जाते हैं। इनके पूर्वज [नहुष आदि] प्रतिष्ठान (आधु-

निक प्रयाग के समीप) तथा आस-पास के छोटे प्रदेश के राजा थे । ययाति ने इस राज्य की सीमाएँ चारों ओर बहुत बढ़ा लीं । उनके पाँच पुत्र हुए—यदु, तुर्वासु, द्रव्यु, अनु और पुरु । ययाति के बाद ये पाँचों लड़के साम्राज्य के विभिन्न भागों के शासक हुए । यह विभाजन संभवतः इस प्रकार था—पुरु प्रतिष्ठान और उसके समीपस्थ प्रदेश का स्वामी हुआ । इसके बांशज ‘पौरव’ कहलाए । प्रतिष्ठान केदक्षिण-पूर्व का प्रदेश तुर्वासु को मिला । उसके पश्चिम-केन तथा बेतवा नदियों के काँठे की भूमि का शासक यदु हुआ । इस भू-भाग के उत्तर—पश्चिम का प्रांत द्रव्यु के अधिकार में आया और उम के पूर्व गंगा-यमुना दोआब का इलाका तथा उसके पूर्व का कुछ प्रदेश, जिसकी पूर्वी सीमा अयोध्या राज्य से मिलती थी, अनु को मिला ।*

यदु अपने भाइयों में सबसे अधिक प्रतापी निकला । उसके नाम पर उसके बांशज ‘यादव’ कहलाए । यादवों ने कालांतर में अपने कई केन्द्र स्थापित किये और इस प्रकार उनकी अनेक शाखाएँ हो गईं । इनका प्रसार विशेषतः मालवा, गुजरात तथा सौराष्ट्र (काठियावाड़) की ओर हुआ । एक शाखा त्रिपुरी (आधुनिक जबलपुर के समीप) में भी जम गई । यह प्रसिद्ध शाखा ‘हैहय बांश’ कहलाई ।

अब प्रश्न यह है कि मथुरा तथा उसके आसपास के प्रदेश पर यादवों ने सर्वप्रथम कब अपना आधिपत्य स्थापित किया ? संभवतः यदु के बाद बहुत पीढ़ियों तक यह प्रदेश यादवों के प्रभाव से मुक्त रहा । पुराणों में दी हुई यादव बांश की तालिकाओं में ४४ वें पीढ़ी में मधु राजा का नाम मिलता है । इन बांश-तालिकाओं के अनुसार यह मधु अयोध्या के

* देखिए जयचंद्र विद्यालंकार—रूपरेखा जिल्ड १, पृ० १२८-२६.

इद्वाकुवंशी राजा रघु के पूर्वज दिलीप का [लगभग] समकालीन था। अतः यह मधु उस 'मधु दैत्य' से निश्चय ही भिन्न था जो लवण का पिता था और जिसका वर्णन हम पिछले अध्याय में कर चुके हैं। लवण शत्रुघ्न या राम का समकालीन था, अतएव उसका पिता मधु दशरथ का समकालीन कहा जा सकता है, न कि उनसे कई पीढ़ी पहले हुए दिलीप का। अतः यही मानना उचित होगा कि यादव वंश की ४४ वीं पीढ़ी में हुआ मधु लवण के पिता मधु से, जो मधुपुरी तथा मधुवन का शासक था, बहुत पहले हा चुका था। इस पहले मधु के पुत्र का नाम पुरुषश (न कि लवण) मिलता है और पौत्र का नाम पुरुदंत मिलता है।

यादव वंश की ४४ वीं पीढ़ी वाले मधु का राज्य कहाँ था, यह बताना कठिन है। इस बात के कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिलते कि वह एक बड़े भू-भाग का स्वामी था और मथुरा प्रदेश भी उसके शासन के अंतर्गत था। पौराणिक वर्णनों से यही प्रतीत होता है कि उसके समय में प्राचीन मथुरा प्रदेश घने जंगलों से आच्छादित था। संभवतः अभी तक वहाँ आर्य संस्कृति का प्रवेरा नहीं हुआ था और मधु दैत्य के पूर्वज अनार्य लोग वहाँ के अधिकारी थे।

जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, श्रीराम के समय (लग० ई० पू० २५००) में शत्रुघ्न ने मधु के पुत्र लवण का संहार कर मधुपुरी में आर्य बस्ती बसाई और आस-पास के प्रदेश को अपने अधिकार में किया। परंतु पौराणिक वर्णनों से प्रकट होता है कि श्रीराम और शत्रुघ्न की मृत्यु के बाद यादव वंशी सत्त्वंत के पुत्र भीम सात्वत ने मथुरा नगर और शूरसेन जनपद पर कब्ज़ा कर लिया। संभवतः तभी यह प्रदेश यादवों के आधिपत्य में पहले-पहल आया। भीम के सात

पुत्र थे, जिनमें से अंधक और वृष्णि अधिक प्रसिद्ध हुए। ये राम-पुत्र कुश के समकालीन थे। वृष्णि शूरसेन प्रदेश के शासक हुए, जिसकी राजधानी मथुरा थी। अंधक सौराष्ट्र के शासक हुए, जिसका केन्द्र द्वारका में था। इन दो प्रधान राज्यों के अतिरिक्त यादवों के अन्य कई राज्य विदर्भ, मालवा, गुजरात आदि प्रदेशों में स्थापित हो गये।

अब यहाँ हर्यश्व-मधुमती के उपाख्यान की संक्षिप्त चर्चा करनी आवश्यक है। यह उपाख्यान विस्तार से हरिवांश पुराण के विष्णुपर्व, अध्याय ३७, में दिया हुआ है। इससे पता चलता है कि हर्यश्व अयोध्या के इद्वाकु वंश के थे और उन्होंने उपर्युक्त मधु दैत्य की पुत्री मधुमती से विवाह कर लिया था।* संभवतः इसी से क्रुद्ध होकर उनके भाई ने उनका अयोध्या से वहिष्कार कर दिया। मधुमती के कहने पर हर्यश्व अपने श्वसुर मधु के पास मधुवन चले आये। मधु ने उन दोनों का बड़ा स्वागत किया और हर्यश्व से कहा “अब तुम इस प्रदेश पर शासन करो, तुम्हारा साला लवण तुम्हारी सब प्रकार से सहायता करेगा। कालांतर में तुम्हारा वंश ययाति वाले यदु वंश के साथ घुल-मिल जायगा। यद्यपि तुम सूर्यवंश में उत्पन्न हुए हो तथापि तुम्हारी संतति चंद्रवंश की एक शाखा हो जायगी”।† इसके बाद हर्यश्व के द्वारा राज्य-विस्तार का तथा गिरि पर एक नगर (संभवतः गोवर्धन) बसाने का उल्लेख है। फिर उनके शासन-प्रबंध की प्रशंसा है। अंत में उनके वंश का वर्णन इस प्रकार दिया है—हर्यश्व के मधुमती

* “तस्यासीद्यिता भार्या मधोदैत्यस्य वै सुता ।

देवी मधुमती नाम यथेन्द्रस्य शक्ती तथा ॥ (हरि० २, ३७, १३)

† “यायातमपि वंशस्ते समेष्यति च यादवम् ।

अनुवंशं च वंशस्ते सोमस्य भविता किल ।” (हरि० २, ३७, ३४)

से यदु हुआ, यदु के माधव आदि पुत्र हुए। माधव का पुत्र सत्वान्, उसका भीम, भीम का अंधक और अंधक का पुत्र रवत हुआ। रैवत का ऋक्ष, उसका विश्वगर्भ, आर उसका पुत्र वसु हुआ। वसु से वसुदेव और वसुदेव से कृष्ण हुए।

उपर्युक्त वंश-तालिका ठीक नहीं जँचती। इस तालिका के अनुसार भीम के बाद सातवीं पीढ़ी में कृष्ण आते हैं, जबकि पुराणों की अन्य सूचियों के अनुसार कृष्ण भीम सातवत से कम से कम बारह पीढ़ी बाद हुए। परन्तु हरिवंश के उपर्युक्त उपाख्यान में कुछ ऐसी बातें अवश्य हैं जो विचारणीय हैं। इस उपाख्यान से पता चलता है कि सूर्यवंशी हर्यश्व ने मधु दैत्य की पुत्री से विवाह किया और दोनों मधुवन में आकर रहने लगे, उन्होंने लवण की सहायता से राज्य विस्तार किया, आदि। हर्यश्व के वहिष्कार का कारण संभवतः यही था कि उन्होंने अनार्य जाति की कन्या से विवाह कर लिया था। इस समय आर्य लोग विजातीयों के साथ वैवाहिक संबंध को बहुत हेय समझते रहे होंगे। संभवतः अपने बहनोई के इस अपमान का बदला लेने के लिये ही लवण ने यथेष्ट शक्ति-संचय के बाद अयोध्या के इक्ष्वाकु-वंशियों को युद्ध के लिये ललकारा। हरिवंश (१, अ० ५४) से प्रकट है कि लवण ने राम के पास युद्ध का निमंत्रण लेकर अपना दूत भेजा और उसके द्वारा यह साफ-साफ कहला दिया कि 'हे राम, तुम्हारे राज्य के बिलकुल निकट ही मैं तुम्हारा शत्रु हूँ। मेरा-जैसा राजा तुम्हारे-जैसे बलदृष्ट 'सामंत' को नहीं देख सकता' * ।...

* "विषयासन्नभूतोस्मि तव राम रिपुश्च ह ।
न च सामंतमिच्छन्ति राजानो बलदपितम् ॥"

तुमने जो रावणादि का वध किया है सो अच्छा काम नहीं किया, बल्कि यह महा कुत्सित कर्म किया है'....आदि आदि ।

हरिवंश के इस वर्णन से प्रतीत होता है कि लवण ने अपने राज्य का विस्तार काफ़ी कर लिया था । इस कार्य में उसे अपने बहनोई हर्यश्व से बड़ी सहायता मिली होगी । शायद लवण के राज्य की पूर्वी सीमा गङ्गा नदी तक पहुँच गई थी । इसी कारण संभवतः उसने अयोध्या के तत्कालीन शासक राम को कहलाया कि "मैं तुम्हारे राज्य के निकट का ही शासक हूँ" । लवण की दर्पोक्ति तथा राम के प्रति उसकी खुली चुनौती से प्रकट होता है कि वह मामूली आदमी नहीं था । कम से कम इस समय लवण की शक्ति प्रदल रही होगी, अन्यथा उन राम से, जिन्होंने कुछ समय पूर्व ही रावण--जैसे प्रतापी शत्रु का संहार कर अपने शौर्य और साहस की धाक भारत में जमाली थी, लोहा लेना आसान काम नहीं था । लवण के द्वारा रावण की सराहना एवं राम की निंदा करना इस बात का सूचक है कि द्राविड़ (अनार्य) वंशी रावण की नीति और कार्य लवण को पसंद थे । हरिवंश में इस नीति की व्याख्या राम को भेजे गये लवण के संदेश में निहित है । इससे भी लवण का अनाय मानना युक्तिसंगत प्रतीत होता है ।

लवण को इक्ष्वाकुओं से लोहा लेने पर विजय नहीं मिली । शत्रुघ्न के हाथ से वह मारा गया । शायद हर्यश्व की भी मृत्यु या तो युद्ध के पूर्व या इसी युद्ध में होगई । अब शत्रुघ्न मथुरा नगरी तथा उसके चारों ओर के जनपद के स्वामी हुए । परंतु पौराणिक अनुश्रुति से ज्ञात होता है कि उनकी मृत्यु के बाद यहाँ यादववंशी सत्वान् या सत्वंत के पुत्र भीम सात्वत

का अधिकार हो गया। हरिवंश के हर्यश्व-उपाख्यान को बिलकुल ठीक न मानने पर भी उससे इतना प्रतीत होता है कि हर्यश्व और मधुमती की संतति का संबंध भीम सात्वत और उसके वंशजों के साथ रहा होगा। शायद तभी हरिवंश में कहा गया है कि हर्यश्व के वंशज चंद्रवंश में घुल-मिल जायंगे।

भीम सात्वत के पुत्र अंधक और वृष्णि का उल्लेख ऊंपर किया जा चुका है। इन दोनों के वंश आगे चल कर बहुत प्रसिद्ध हुए। महाभारत-युद्ध के कुछ पूर्व मथुरा वाले अंधक वंश में उग्रसेन और उनके पुत्र कंस थे तथा द्वारका के वृष्णि वंश में शूर के पुत्र वसुदेव थे। उग्रसेन के भाई देवक के सात पुत्रियाँ थीं, जिनमें देवकी सबसे बड़ी थी। ये सातों वसुदेव को व्याही गईं। वसुदेव के देवकी से कृष्ण पैदा हुए। वसुदेव की बहिन कुंती राजा पाण्डु को व्याही गई, जिससे युधिष्ठिर आदि पांडव हुए।

अंधक और वृष्णि द्वारा परिचालित राज्य गणराज्य थे, अर्थात् इनका शासन किसी एक राजा के द्वारा न होकर जनता के चुने हुए व्यक्तियों द्वारा होता था। ये व्यक्ति अपने में से एक प्रधान चुन लेते थे जो 'गणमुख्य' कहलाता था। कहीं-कहीं इसे 'राजा' भी कहते थे, पर नृपतन्त्र वाले स्वेच्छाचारी राजासे वह बिलकुल भिन्न होता था। महाभारतके समय अंधक और वृष्णि राज्यों ने मिलकर अपना एक सङ्ग बना 'लिया था। इस सङ्ग के दो मुखिया चुने गये—अंधकों के प्रतिनिधि उग्रसेन और वृष्णियों के कृष्ण। इस सङ्ग की व्यवस्था बहुत समय तक सफलता के साथ चलती रही और इस शासन से प्रजा संतुष्ट रही। परंतु तो भी कभी-कभी राजनैतिक दलबंदियाँ

हो जाया करती थीं। ऐसे मौकों पर नेताओं को बड़े विचार के साथ कार्य करना पड़ता था। महाभारत (शांति पर्व) में श्री कृष्ण और नारद के बीच हुए संवाद में सङ्ख के गुण-दोषों का बड़ा सुंदर विवेचन मिलता है।



२. श्री कृष्ण कालीन मथुरा

(लगभग ई० पू० १५०० से १४०० तक)



ईस्वी पूर्व १५०० के बाद मथुरा का इतिहास मुख्यतया श्री कृष्ण पर केंद्रित मिलता है। यह नगरी ऐसी महान् विभूति का जन्मस्थान होने का कारण धन्य हो गई। मथुरा ही नहीं इसके आस-पास का शूरसेन या ब्रज प्रदेश भी आनंदकंद कृष्ण की विविध मनोहर लीलाओं की क्रांडाभूमि होने के कारण सारे भारतवर्ष में गौरवान्वित हो उठा। भागवतकार ने ठीक ही कहा है—

‘जयति तेऽधिकं जन्मना ब्रजः श्रयत इन्दिरा शश्वदत्रहि ।’

(भाग० १०, ३१, १)

[“हे कृष्ण, यहाँ तुम्हारे जन्म लेने के कारण ही इस ब्रज भूमि का गौरव इतना अधिक बढ़ गया है और इसमें श्री का शश्वत् निवास हो गया है।”]

मथुरा नगरको कालांतरमें जो इतनी असाधारण प्रसिद्धि प्राप्त हुई वह वास्तव में इस महापुरुष की जन्मभूमि होने के

कारण ही। श्री कृष्ण के विविध चरितों से हमारे प्राचीन साहित्य का बड़ा भाग ओत-प्रोत है। उनके लोकरंजक रूप ने भारतीय जनता के मानस-पटल पर एक अमिट छाप लगादी है और उनका गीता में कथित निष्काम कर्मयोग समस्त मानव-जाति के लिये एवं सभी देश-काल के लिये कल्याण का मार्ग प्रस्तुत करता है।

इन युगपुरुष श्रीकृष्ण का संपूर्ण जीवन-वृत्तांत इस पुस्तक में नहीं दिया जा सकता। हम यहाँ संक्षिप्त रूप में उनके जीवन की केवल उन घटनाओं को लेंगे जिनका संबंध विशेष रूप से मथुरा से रहा है। इनमें सबसे प्रथम उनके जन्म की घटना है। जैसा कि प्राचीन साहित्य से ज्ञात होता है, श्रीकृष्ण का जन्म कंस के कारागार में पड़ी हुई देवकी माता के गर्भ से हुआ। ऐतिहासिकों ने यह जन्म-काल लगभग ई० पू० १५०० माना है। कंस का कारागार, जहाँ श्री कृष्ण पैदा हुए, आधुनिक मथुरा नगर के पश्चिम में स्थित कटरा केशवदेव नामक मुहल्ले में उस स्थान के समीप ही रहा होगा जहाँ इस समय औरंगजेब की लाल मस्जिद खड़ी है। इसके संबंध में विस्तृत वर्णन आगे मिलेगा।

कंस का शासन-काल

कृष्ण का मामा कंस मथुरा का स्वेच्छाचारी शासक बन गया था। उसने अब तक चली आई गणराज्य की परंपरा को तोड़ दिया था। उसकी स्वार्थ-पूर्ण अनीति का पता इसी बात से चलता है कि उसने अपने पिता उग्रसेन को पदच्युत कर दिया और स्वयं मथुरा के यादवों का प्रधान बन गया। इससे जनता

का क्षुभित होना स्वाभाविक था। परंतु कंस की अनीति यहीं तक सीमित नहीं रही, वह शीत्र ही मथुरा का निरंकुश शासक बन गया और प्रजा को अनेक प्रकार से पीड़ित करने लगा। वह धीरे-धीरे वैदिक धर्म का कट्टर विरोधी हो गया, जिससे प्रजा में उसके प्रति बड़ा असंतोष फैल गया। परंतु कंस की शक्ति इतनी प्रदल थी और उसका इतना आतंक हो गया था कि बहुत समय तक जनता उसके अत्याचारों को सहती रही और उसके विरुद्ध कुछ कर सकने में असमर्थ रही।

कंस की इस शक्ति का प्रधान कारण यह था कि उसे उत्कालीन आर्यवर्त के सर्व-प्रतापी राजा जरासंघ का सहारा प्राप्त था। यह जरासंघ पौरव वंश का था और मगध का शासक था। अपनी राजनीति द्वारा उसने अनेक प्रदेशों के राजाओं से मैत्री-संबंध स्थापित कर लिए थे, जिनसे उसे अपनी शक्ति के प्रसार में बड़ी सहायता मिली। कंस को जरासंघ ने अस्ति और प्राप्तिनाम की अपनी दो लड़कियाँ द्याह दीं और इस प्रकार उससे अपना गहरा संबंध जोड़ लिया। चेदि के यादववंशी राजा शिशुपाल को भी जरासंघ ने अपना घनिष्ठ मित्र बना लिया। इधर उत्तर-पश्चिम में उसने कुरुराज दुर्योधन को अपना मित्र बनाया। पूर्वोत्तर की ओर आसाम के राजा भगदत्त से भी उसने मित्रता जोड़ली। इस प्रकार प्रधान राजाओं से मैत्री-संबंध स्थापित कर जरासंघ ने अपने पड़ोसी राज्यों—काशी, कोशल, अंग, बंग आदि--पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। कुछ समय बाद कलिंग का राज्य भी उसके अधीन हो गया। अब जरासंघ उत्तर भारत का सबसे अधिक प्रभावशाली शासक बन गया। श्री

कृष्ण ने युविष्टि से जरासंध की बाबत जो बातें कहीं (महाभारत सभा०, अ० १३) उनसे पता चलता है कि जरासंध उत्तरापथ का अप्रतिद्वंद्वी शासक बन गया था और उससे सभी राजा भय खाते थे ।

कंस अपने श्वसुर जरासंध के बल पर मदोन्मत्त हो गया और दिन पर दिन अपने अत्याचार बढ़ाता गया । मथुरा के बहुत से यादव तथा दूसरे निवासी कंस के डर से अन्य प्रदेशों में जा वसे । कंस को जब यह शङ्का हुई कि उसको बहिन देवकी के गर्भ से उत्पन्न होने वाला बच्चा उसका मारने वाला होगा तो उसने वसुदेव-देवकी दोनों को कारागार में बन्द करा दिया और उन पर कड़ा पहरा लगवा दिया । देवकी के जो संतान उत्पन्न होती थी उसका कंस तुरंत वध करा डालता था । आठवीं बार बालक कृष्ण का जन्म भादौं कृष्ण अष्टमी को आधी रात के समय हुआ । भगवान् की माया से इस समय कारागार के फाटक खुल गये और द्वारपाल निद्रा से अभिभूत होने के कारण बालक के जन्म की बात न जानसके । वसुदेव बालक को लेकर धीरे से बाहर निकल गये । वे रातों-- रात यमुना पार कर गोकुलमें अपने मित्र नन्दके यहाँ जापहुँचे । उसी रात वहाँ नन्द की पत्नी यशोदा ने एक बालिका को जन्म दिया था । परंतु प्रसवजनित वेदना और फिर निद्रा से अचेत हो जाने के कारण यशोदा को यह नहीं मालूम हुआ कि उन्होंने पुत्र को जन्म दिया है या पुत्री को । वसुदेव ने बालक कृष्ण को तो यशोदा के पास लिटा दिया और बालिका को लेकर शीघ्र ही मथुरा लोट आये । उन्होंने बंदीगृह में जाकर वह लकड़ी देवकी को देदी । प्रातः काल जब कंस को इसकी सूचना मिली तो वह तुरंत बंदीगृह आ पहुँचा । इस निरीह बालिका

को भी जीवित रहने देना कंस ने उचित नहीं समझा और उसे भी दिवंगत कर दिया।

इधर गोकुल में नंद के घर पुत्र-जन्म का उत्सव मनाया जाने लगा। धीरे-धीरे बालक कृष्ण का बाल्य-काल यहीं व्यतीत होने लगा। कंस ने उनके मरवाने के अनेक उपाय रचे पर उसे सफलता न मिली। जब कंस के उपद्रव गोकुल में बहुत दड़ गये और उसका भेजा हुआ एक न एक बदमाश आये दिन गोकुल और उसके आस-पास महावन में, जहाँ कृष्ण और बलराम ग्वालों के साथ गायें चराया करते थे, दिखाई पड़ने लगा तब नन्द आदि गोपों ने सोचा कि अब अधिक दिनों तक गोकुल में रहना ठीक नहीं। उपनंद नाम के एक वृद्ध गोप को सलाह से गोकुल निवासी अपने पशुओं तथा अन्य सामान के सहित वृन्दावन* नामक स्थान को चले गये और वहीं उन्होंने अपनी बस्ती बसाली। इस वन में गोचर भूमि की अधिकता के कारण पशुओं के लिये चारे आदि का

* यह स्थान वर्तमान वृन्दावन (जो मथुरा से केवल ६-७ मील दूर है) नहीं हो सकता। पुराना वृन्दावन, जिसमें नंदादि गोकुल से गए, संभवतः आधुनिक नंदगांव के दक्षिण-पश्चिम में कामवन की ओर फैला हुआ था। इन गोपों ने नंदगांव में या इसके आस-पास ही अपनी बस्ती बसाई होगी।

पुराणों से पता चलता है कि प्राचीन वृन्दावन के एक भाग में नाग जाति के लोगों का प्रभुत्व था। उनके प्रधान कालिय नाग को श्री कृष्ण ने परास्त कर नागों को उस प्रदेश से बाहर निकाल दिया। नाग लोग सर्प न होकर मनुष्य थे। इनका विशेष चिन्ह नाग का कण होता था और वे सर्पों की पूजा करते थे। कोलों, शावरों और किरातों की तरह नाग लोग भी भारत के प्राचीन निवासी थे।

बड़ा सुपास था। मनुष्यों के लिये भी इस सुन्दर स्थान में सब आवश्यक सुविधायें प्राप्त थीं। यहाँ कृष्ण और बलराम अपने बाल्यकाल के दिवस व्यतीत करने लगे।

यद्यपि कृष्ण अब मथुरा से अधिक दूर हो गये थे तो भी उन्हें मारने के लिये कंस की चालें बंद न हुईं। उसे कृष्ण के प्रति बड़ी शंका हो गई थी। वह बरादर इसी प्रयत्न में रहता था कि किसी प्रकार कृष्ण को मरवा डाला जाय, जिससे यह खटकने वाला कंटक सदा के लिये दूर हो जाय। कंस ने इस नये स्थान में भी अनेक हत्यारे इझ उहे श्य से भेजे कि वे किसी प्रकार कृष्ण को समाप्त कर दें। पर कृष्ण इतने चतुर, साहसी और शक्तिशाली हो गये थे कि उन्होंने कंस के भेजे हुए सभी बदमाशों को एक-एक कर नष्ट कर दिया।

जब कंस सब तरह से हार गया तब उसने धनुर्यज्ञ में सम्मिलित होने के बहाने नन्द को, जो उसके करद थे, उनके परिवार और कुदुम्बियों सहित मथुरा बुला भेजा। नन्द अपने राजा की आज्ञा मानकर कृष्ण-बलराम तथा अन्य गोपों को लेकर मथुरा आये। मथुरा में इस समय कंस के विरोधी काफ़ी संख्या में हो गये थे। इसका अनुमान इसी बात से हो सकता है कि नगर पहुँचने पर कृष्णादि का अच्छा स्वागत हुआ। कंस के अत्याचारों से दुःखित लोगों ने जब उन्हें देखा तो उनके हृदयों में आशा का सम्भार हुआ। वे कृष्ण-बलराम के अद्भुत पराक्रमों का हाल सुन चुके थे और जानते थे कि इन साहसी बालकों के द्वारा कंस का वध हो जाना असम्भव नहीं है। मथुरा के अधिकांश निवासियों की यही इच्छा थी

कि किसी प्रकार कंस के अत्याचारों से उन्हें हुटकारा मिले और मथुरा में फिर से प्रजोत्तन्त्र का आगमन हो ।

कंस के समय में मथुरा का क्या स्वरूप था, इसकी शायद कुछ भलक पौराणिक वर्णनों में मिलती है । जब श्री कृष्ण ने पहली बार इस नगरी को देखा तो भागवतकार के शब्दों में उसकी शोभा इस प्रकार की थी—

“ददर्श तां स्फटिक तुङ्ग गोपुरं
द्वारां बृहद्वेष कपाटतोरणाम् ।
ताम्रारकोऽठां परिखा दुरासदा—
मुद्यानरम्योपवनोपशोभिताम् ॥
सौवर्ण शृंगाटक हर्म्य निष्कृतैः
श्रेणी सभाभिर्भवनैरूपस्कृताम् ।
वैदूर्यवज्रामल नीलविद्रमै—
मुर्क्ताहरिद्विर्वलभीषु वेदिषु ॥
जुष्टेषु जालामुखरंध्रकुट्टिमे—
ब्वाविष्ट पारावतवहिनादिताम् ।
संसिक्तरथ्यापणमार्गचत्वरां
प्रकीर्ण माल्यांकुर लाजतंडुलाम् ॥
आपूर्णकुंभैर्दधिचंदनोच्चितैः
प्रसूनदीपावलिभिः सपल्लवैः ।
सवृंदरंभाकमुकैः सकेतुभिः
स्वलंकृतद्वारगृहां सपट्टिकैः ॥”

(भागवत, १०, ४१, २०—२३)

अर्थात् “उस नगरी के प्रवेश-द्वार ऊँचे थे और स्फटिक पत्थर के बने हुए थे । उनके बड़े सिरदल और किवाड़ सोने

के थे। नगरी के चारों ओर की दीवाल (परकोटा) ताँबे और पीतल की बनी थी तथा उसके नीचे की खाई दुर्लम्ब थी। नगरी अनेक उद्यानों एवम् सुन्दर उपवनों से शोभित थी।

सुवर्णमय चौराहों, महलों, दगीचियों एवं सार्वजनिक स्थानों तथा विविध भवनों से वह नगरी युक्त थी। वैदूर्य, वज्र, नीलम, मोती, हीरा आदि रत्नों से अलंकृत छज्जे, वेदियाँ, गवाह (खिड़कियाँ) तथा फर्श जगमगा रहे थे और उन पर बैठे हुए कबूतर तथा मोर अनेक प्रकार के मधुर शब्द कर रहे थे। गलियों और बाजारों में, सड़कों तथा चौराहों पर छिड़काव किया गया था और उन पर जहाँ-तहाँ फूल-मालाएँ, दूर्वा-दल, लाई और चावल बिखरे हुए थे।

मकानों के दरवाजों पर दही और चन्दन से अनुलेपित तथा जल से भरे हुए मंगल घट रखे हुए थे। फूलों, दीपा-वलियों, बन्दनबारों, तथा फलयुक्त केले और सुपारी के वृक्षों से द्वार सजाये गये थे और उन पर पताके और झंडियाँ भी फहरा रहीं थीं। ”

उपर्युक्त वर्णन कंस या कृष्ण-कालीन मथुरा से कहां तक मेल खाता है, यह बताना कंठिन है। परन्तु इससे तथा अन्य पुराणों में प्राप्त वर्णनों से इतना अवश्य ज्ञात होता है कि तत्कालीन मथुरा एक समृद्ध पुरी थी। उसके चारों ओर नगर-दीवाल थी तथा नगरी में उद्यानों का बहुल्य था। मोर पक्षियों की शायद उस समय भी मथुरा में अधिकता थी। महलों, मकानों, सड़कों और बाजारों आदि के जो वर्णन मिलते हैं उनसे पता चलता है कि कंस के समय की मथुरा एक धन-धान्य संपन्न नगरी थी।

श्री कृष्ण अपने अन्य साथियों के सहित नगरी की शोभा देखते हुए राजमार्ग होकर उस स्थान के प्रवेश-द्वार पर पहुँचे जहाँ धनुर्यज्ञ के उत्सव का आयोजन किया गया था। वहाँ पर रखे हुए एक बड़े धनुष को उन्होंने तोड़ डाला। अगले द्वार पर कंस ने कुत्तलयोपीड़ नामक एक हाथी को इस उद्देश्य से वधवा रखा था कि वहाँ कृष्णादि के प्रवेश करते समय वह, इशारा पाते ही, उन्हें कुचल डाले। परंतु कृष्ण ने अपनी चतुराई और बल से इस हाथी को शीघ्र ही यमलोक पहुँचा दिया। इसके बाद वे मुख्य रङ्गभूमि में पहुँचे जो भली भाँति सजाई गई थी। वहाँ कंस, उसके पहलवान तथा मथुरा नगर एवं जनपद के निवासी बड़ी उत्सुकता के साथ कृष्ण के आने की बाट जोह रहे थे। कृष्ण-बलराम आदि के रङ्गभूमि पहुँचते ही वहाँ हलचल का आरम्भ हो गया।

कंस के प्रसिद्ध पहलवानों—चारूर, मुष्टिक, कूट, शल, तोशल आदि—ने कृष्ण-बलराम को मल्ल-युद्ध के लिये प्रेरित किया। परंतु इन दोनों बाल-शूरों ने उनके छक्के छुड़ा दिये और एक-एक कर उन सभी पहलवानोंको मौतके घाट उतार दिया। इस पर सभी दर्शक सज्जनों ने कृष्ण-बलराम के शौर्य की प्रशंसा की। कंस अब बहुत भल्ला उठा। उसने अपने शूर-बीरों को आज्ञा दी कि वे कृष्णादि को, जैसे भी बने, नष्ट कर दें। अब रंगशाला में बड़ी खलबली मच गई। कृष्ण शीघ्र ही उस मंच पर चढ़ गये जिस पर कंस वैठा हुआ था और उसे वहाँ से बीचे गिरा दिया। कंस के प्राण पखेरू थोड़ी ही देर में उड़ गये। कृष्ण ने उसकी लाश घसीट कर यमुना-नदी में प्रवाहित कर दी।

कंस की मृत्यु के बाद

कंस के मारे जाने पर जनता का बहुत बड़ा भाग प्रसन्न हुआ। परंतु कंस के अनुयायी कुछ ऐसे भी लोग थे जो इस घटना से दुःखी हुए। पुराणों के निम्नलिखित श्लोकों में इस ओर संकेत किया गया है—

“ततो हाहाकृतं सर्वमासीत्तद्रङ्गमण्डलम् ।
अवज्ञया हतं दृष्ट्वा कृष्णेन मथुरेश्वरम् ॥”

(विष्णु पु०, ५, २०, ६१)

“हाहेति शब्दः सुमहांस्तदाऽभू—
दुदीरितः सर्वजनैर्नरेन्द्र ॥”

(भाग०, १०, ४४, ३८)

पुराणों का यह कथन कि सारा रंगमण्डल हाहाकार से भर गया यह सूचित करता है कि एक राजा का इस प्रकार मारा जाना लोगों को उचित नहीं जान पड़ा। यह दूसरी बात है कि ऐसे लोगों की संख्या अधिक न रही हो। यह भी हो सकता है कि कंस की रानियों तथा परिजनों ने मथुरेश की ऐसी मृत्यु देख कर हाहाकार स्वरों से सारी रङ्गभूमि उद्धेलित कर दी हो, जिससे कुछ समय के लिये उपस्थित जनता में बेचैनी पैदा हो गई होगी।

कंस के मरने के बाद राजधानी में जनता के द्वारा किसी प्रकार की गड़बड़ी नहीं की गई। कंस के मुख्य अनुयायियों को छोड़ अन्य सभी लोगों ने महाशक्तिशाली कृष्ण का नेतृत्व स्वीकार कर लिया। कृष्ण ने स्वयं मथुरा का राज्यसिंहासन

नहीं ग्रहण किया, यद्यपि बहुत से लोग इस बात के लिये उत्सुक थे। उन्होंने उग्रसेन को, जिन्हें कंस ने पदच्युत कर दिया था, यादवों का नेता और मथुरा राज्य का सञ्चालक बना कर अपनी दूरदर्शिता एवं त्याग-वृत्ति का एक महान् उदाहरण उपस्थित किया।

अब श्री कृष्ण ने अपने माता-पिताको बन्धन से मुक्त कर उनका दुःख निवारण किया। फिर उन्होंने उन समस्त यादवों को मथुरा बुलाया जो कंस के डर से यहाँ से दूर जाकर आवाद हो गये थे और इब पुनः मथुरा लौटने को उत्सुक थे। उनके यहाँ लौट आने पर श्री कृष्ण ने उन्हें युक्त प्रकार से बसाया। अब मथुरा नगरी का रूप बदल गया और यहाँ के निवासी फिर से प्रजातन्त्र का आनन्द भोगने लगे। कृष्ण-बलराम का विधिवत् यज्ञोपवीत संस्कार होने के बाद उन्हें विद्याध्ययन के लिये उज्जयिनी भेजा गया। वहाँ उन्होंने गुरु सांदीपनि से थोड़े ही काल में अनेक विद्याएँ सीखीं। उज्जयिनी से लौट कर वे मथुरा में ही रहने लगे।

जरासंध और मथुरा

जब जरासन्ध को यह समाचार मिला कि उसके दामाद कंस का वध कर डाला गया है तो वह क्रोध से आगबबूला हो गया। उसने प्रतिज्ञा की कि वह इस पृथिवी को यादवों से रहित कर देगा—

“स तदप्रियमाकर्ण्य शोकामर्षयुतो नृप ।
अयादवीं महीं करुं चक्रे परममुद्यमम् ॥”

(भाग०, १०, ५०, ३)

जरासंध को यह बात मालूम हो गई होगी कि कृष्ण को मथुरा के यादवों ने कंस-वध में सहायता दी, अन्यथा वह कृष्ण के अतिरिक्त अन्य यादवों को मारने का श्रीड़ा क्यों उठाता ? अस्तु, पुराणों के वर्णन के अनुसार, जरासंध ने तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर मथुरा पर आक्रमण किया। परन्तु यादवों की सेना ने उसे परास्त कर दिया। इसी प्रकार उसने सबह बार आक्रमण किये, पर हर बार वह असफल रहा। उसे धन-जन की अपार हानि सहनी पड़ी।

जरासंध को इस असफलता के कई कारण हो सकते हैं। उसके राज्य से मथुरा इतनी दूर थी कि काफी समय के लिये सेना को रसद पहुंचाना सम्भव न होता रहा होगा, जिससे उसकी सेना अधिक समय तक मथुरा के यादवों का सामना करने में असमर्थ रहती होगी। दूसरे, यादव लोग युद्ध-विद्या में मागधों से अधिक कुशल रहे होंगे। श्री कृष्ण ने नई प्रकार से ट्रेनिंग देकर उन्हें सामरिक शास्त्र में प्रवीण करा दिया होगा। शायद इस समय मथुरा का दुर्ग भी बहुत दृढ़ बनाया गया होगा, जिसके भेदने में मगधराज को सफलता न मिली होगी।

तो भी जरासंध के लगानार आक्रमणों का मथुरा नगरी पर कुछ न कुछ बुरा प्रभाव अवश्य पड़ा होगा। जब उसने अठारहवीं बार बड़े ज्ओर-शोर के साथ आक्रमण आरंभ किया और उसकी सहायता के लिये कालयवन तीन करोड़ म्लेच्छ लेकर मथुरा की ओर चल पड़ा, तब श्रीकृष्ण ने अनिष्ट की आशंका से यही ठीक समझा कि नगरी को छोड़कर कहीं अन्यत्र चला जाये। उनकी सलाह से मथुरा-निवासी अपना सामान लेकर सोंराष्ट्र की ओर चल पड़े, जहाँ यादवों की वृष्णि

शाखा का बहुत समय पूर्व से अधिपत्य था। उग्रसेन, कृष्ण, बलराम आदि के नेतृत्व में मथुरा के यादवों ने बहुत बड़ी संख्या में मथुरा से प्रयाण किया और सौराष्ट्र की नगरी द्वारावती में जाकर बस गये।*

मथुरा के इतिहास में महाभिनिष्करण की यह घटना बड़े महत्व की है। यद्यपि इसके पूर्व भी यह नगरी कम से कम दो बार खाली की गई थी—पहली बार शत्रुघ्न विजय के उपरांत लवण के अनुयायिओं द्वारा और दूसरी बार कंस के अत्याचारों से ऊबे हुए यादवों द्वारा—पर जितने बड़े पैमाने पर मथुरा इस तीसरे अवसर पर खाली हुई उतना पहले कभी न हुई थी। इस बार परित्यक्ता मथुरा की आबादी बहुत कम रह गई होगी। कालयवन् और जरासंध की सम्मिलित फौज ने नगरी को अवश्य ज्ञाति पहुंचाई होगी। पर इसकी बाबत विस्तृत और ठीक पता नहीं चलता। यह भी नहीं ज्ञात होता कि जरासंध ने अंतिम आक्रमण के फलस्वरूप मथुरा पर अधिकार कर लेने के बाद वहाँ अपनी ओर से किसी यादव को शासनारूढ़ किया अथवा किसी अन्य व्यक्ति को।

परंतु जैसा कि महाभारत एवं पुराणों से पता चलता है, कुछ वर्ष बाद ही श्रीकृष्ण ने बड़ी युक्ति के साथ पांडवों की

*महाभारत में यादवों के निष्करण का समाचार श्रीकृष्ण के द्वारा युधिष्ठिर को इस प्रकार बताया गया है—

“वयं चैव महाराज जरासंधभयात्तदा ।
मथुरां संपरित्यज्य गता द्वारवतीं पुरीम् ॥

(म० भा० २, १३, ६५)

सहायता से जरासंध का वध करा दिया। अतः यदि जरासंध का अधिकार मथुरा में रहा भी तो वह थोड़े ही समय के लिये। मगधपति जरासंध को मारने के बाद श्रीकृष्ण के साहस, बल एवं बुद्धिमत्ता की ख्याति सारे भारत में फैल गई होगी। जब उन्होंने पांडवों के राजसूय यज्ञ में प्रतापी चेदि नरेश शिशुपाल का भी वध कर दिया तब तो निसंदेह वे महाशक्ति संपन्न समझे जाने लगे और उनकी धाक सर्वात्र जम गई।

महाभारत-युद्ध

इधर शूरसेन जनपद के उत्तर कुसुप्रदेश में कौरवों तथा पांडवों के बीच भगड़ा बढ़ते-बढ़ते इस सीमा पर जा पहुँचा कि उसने एक महायुद्ध का रूप धारण कर लिया, जिसमें भाग लेने के लिये भारत के प्रायः सभी जनपदों के शासक सन्नद्ध हो गये। दोनों ओर से समर की तैयारियाँ होने लगी और अंत में कुरुक्षेत्र के मैदान में दोनों ओर की सेनाएँ आ डटीं। युद्ध होने के पूर्व श्रीकृष्ण ने अर्जुन को गीता का महान् उपदेश दिया।

महाभारत-युद्ध में श्रीकृष्ण ने पांडवों का साथ इस लिये दिया कि उनका पक्ष न्यायसंगत था। शूरसेन जनपद के यादव कौरवों की ओर रहे। इसका प्रधान कारण यह प्रतीत होता है कि बलराम की सहानुभूति पांडवों की अपेक्षा कौरवों की ओर अधिक थी। शायद श्रीकृष्ण ने भी दुर्योधन को यह वचन द्वे दिया था कि वे स्वयं तो पांडवों की ओर रहेंगे और उनकी यादव सेना कौरवों की सहायता करेगी। दक्षिण तथा दक्षिण-पश्चिम के यादव-राज्यों में से कुछ ने पांडवों का और कुछ ने कौरवों का साथ दिया।

यह महायुद्ध अठारह दिन तक लगातार जारी रहने के बाद समाप्त हुआ। श्रीकृष्ण की सहायता से पांडवों की विजय हुई और सभी कौरवों का संहार हुआ। पांडव कुरु प्रदेश के शासक हुए और उन्होंने हस्तिनापुर का राज्य सँभाला।

महाभारत-युद्ध की समाप्ति के बाद देश में एक गिरिचित्र सन्नाटा-सा छा गया। इस महाभीषण संग्राम में अपार धन-जन स्वाहा हो गया। इसका भयंकर प्रभाव बहुत समय तक देश के विभिन्न जनपदों पर बना रहा। यद्यपि पांडव युद्ध में विजयी हुए थे, पर इस विजय से उन्हें पूरा संतोष नहीं हुआ। युद्ध के उपरांत श्रीकृष्ण द्वारका में रहने लगे। उनकी अवस्था इस समय १०० वर्ष के लगभग होगई थी। कुछ वर्षों के उपरांत सौराष्ट्र और गुजरात के यादवों ने गृहयुद्ध के कारण अपना सर्वानाश कर लिया। इसी समय श्रीकृष्ण ने भी अपनी इहलीला समाप्त की। यह समाचार पाकर पांडवों को बड़ा दुःख हुआ। अर्जुन द्वारका जाकर बचे-बचाये यादवों को अपने साथ ले आये और उन्हें इंद्रप्रस्थ में तथा आस-पास दसा दिया। कुछ समय बाद ही पांडव लोग परीक्षित् को राज्य सौंप उत्तराखण्ड की ओर चले गये। वहीं उन्होंने अपने शरीर-त्याग किये।

३. महाभारत-युद्ध के बाद मथुरा

[लगभग ई० पू० १४०० से ई० पू० ६०० तक]



महाभारत-संग्राम के बाद आर्यवर्त के अन्य जनपदों की तरह शूरसेन जनपद का भी व्यवस्थित इतिहास नहीं मिलता। पांडवों के उपरांत उनके नाती परीक्षित् ने हस्तिनापुर का राज्य संभाला। उनके समय में उत्तर-पश्चिम की ओर नागों की शक्ति बहुत प्रबल हो गई। वे पञ्चाब होकर हस्तिनापुर आ पहुँचे। यहाँ उनका अवरोध न किया जा सका। नागों ने राजा परीक्षित् को समाप्त कर दिया।

परीक्षित् का लड़का जनमेजय अपने पिता से कहीं अधिक पराक्रमी था। उसने नागों को मार भगाया और उनके अंतिम बड़े अड्डे तक्षशिला तक उन्हें खदेड़ दिया। इतना ही नहीं, जनमेजय ने तक्षशिला के नागों की शक्ति को समूल नष्ट कर दिया। जनमेजय के शासन-काल में कुरु-राज्य फिर प्रबल हो गया। शूरसेन राज्य की सीमा दक्षिण में इस राज्य से मिलती थी।

जनमेजय के बाद उनके पुत्र शतानीक, फिर उनके बेटे अश्वमेधदत्त और फिर उनके पुत्र अधिसीमकृष्ण ने राज्य किया। अश्वमेधदत्त के समकालीन पंचाल राज्य के प्रसिद्ध राजा प्रवाहण जैबलि थे। इन सब राजाओं के नाम पुराणों में मिलते हैं।

शूरसेन जनपद में इस काल में यादवों का ही राज्य रहा। पर उनके किसी राजा के नाम का उल्लेख नहीं मिलता। संभवतः अग्रसेन के बाद मथुरा में कोई ऐसा प्रसिद्ध यादव राजा नहीं हुआ जिसकी चर्चा पुराणकार करते। अन्यथा जहाँ शूरसेन के पड़ोसी जनपदों के शासकों के उल्लेख मिलते हैं वहाँ मथुरा के भी राजाओं के नाम अवश्य दिये जाते।

ऐसा ज्ञातहोता है कि कुछ समयके अनन्तर कुरु और पंचाल राज्यों की भी शक्ति बहुत घट गई। अंत में ये दोनों मिलकर एक हो गये। यहाँ के शासक-वर्ग के लेग कुछ समय बाद दक्षिण-पूर्व की ओर जाकर वत्स नामक प्रदेश में बस गये। इसकी राजधानी कौशांबी (इलाहाबाद जिले का वर्तमान कोसम गाँव) हुई। इस अभिनिष्क्रमण के बाद से दक्षिण तथा पूर्व की ओर के जनपदों का महत्व बढ़ा और उत्तर तथा पश्चिम की तरफ बाले जनपद धीरे-धीरे अपना गैरव खोने लगे।

सोलह महाजनपद

बौद्ध तथा जैन साहित्य से पता चलता है कि बुद्ध-जन्म के पहले भारत में सोलह बड़े राज्य स्थापित हो चुके थे। इन्हें 'सोलह महाजनपद' कहा गया है। * इन जनपदों का यह बड़ा

* बौद्ध ग्रंथ 'अंगुत्तर निकाय' [१, २१३; ४, २५२-२५६] में इन जनपदों का सबसे अधिक वर्णन मिलता है। जैन पुस्तक 'भगवतीसूत्र' में दी हुई सूची का क्रम बौद्ध सूची से कुछ भिन्न है।

रूप ई० पू० ७०० के लगभग या इससे भी पहले बन चुका होगा। ये महाजनपद इस प्रकार थे—

अङ्ग, मगध, काशी, कोशल, वृजि, मङ्ग, वत्स, चेदि, कुरु, पंचाल, शूरसेन, मत्स्य, अवंति, अश्मक, गांधार और कंबोज। इनमें से शूरसेन जनपद की राजधानी का नाम मथुरा दिया हुआ है। बौद्ध एवं जैन ग्रंथों में इस मथुरा नगरी के संबन्ध में जो वर्णन मिलते हैं उनकी चर्चा अगले अध्याय में की जायगी।

उपर्युक्त सोलह बड़े जनपदों के अतिरिक्त तत्कालीन भारत में अनेक छोटे जनपद भी थे, जैसे—केक्य, त्रिगर्त, यौधेय, अवष्ट, शिवि, सौवीर, आंध्र आदि। सोलह महाजनपद बहुत काल तक यथापूर्व स्थिति में न रह सके। इनमें से कुछ में दूसरों को हड्डप कर अपना विस्तार बढ़ाने की भावना बढ़ी, विशेष कर पूर्वी जनपदों में। काशी, कोशल, मगध अङ्ग, वत्स आदि राज्यों में हम यह बात स्पष्ट रूप से पाते हैं। इसका फल यह हुआ कि विभिन्न जनपदों के बीच संधि-विग्रह की घटनाएँ द्रुतगति से बढ़ने लगीं। महात्मा बुद्ध के समय तक आते-आते मगध, कोशल, वत्स और अवन्ति--ये भारत के चार प्रधान राज्य बन गये और इनके सामने प्रायः सभी अन्य जनपदों की स्थिति गैण हो गई।



आध्यात्मा इ

मथुरा का इतिहास

[ई० पू० ६०० से लेकर ब्रृटिश आधिपत्य की समाप्ति तक]



महात्मा बुद्ध का समय

महात्मा बुद्ध के जीवन-काल (ई० पू० ६२३-५४३) में मथुरा की दशा का कुछ परिचय प्राचीन बौद्ध एवं जैन साहित्य से प्राप्त होता है। इस साहित्य से पता चलता है कि ई० पू० ६०० के बाद यहाँ अवांतिपुत्र (अवांतिपुत्रो) नाम का राजा राज्य कर रहा था। यह अवांति (पश्चिमी मालवा) के राजा चंडप्रद्योत की लड़की का लड़का था। चंडप्रद्योत की एक लड़की वासवदत्ता का विवाह कौशांबी के प्रसिद्ध राजा उदयन से हुआ था। दूसरी लड़की मथुरा के राजा* को व्याही गई, जिससे अवांतिपुत्र का जन्म हुआ। तत्कालीन समृद्ध एवं विशाल अवांतिराज्य के साथ मथुरा का वैवाहिक संबंध इस बात को सूचित करता है कि इस समय भी शूरसेन जन-पद का स्थान गोरवपूर्ण माना जाता था।

* इस राजा का नाम अंगुत्तरनिकाय आदि बौद्ध ग्रन्थों में नहीं मिलता, न जैन या वैदिक साहित्य में ही पाया जाता है। यह राजा संभवतः यादव वंश की ही शाखा का था।

बौद्ध ग्रंथों से ज्ञात होता है कि अवंतिपुत्र के राज्य-काल में एक बार बुद्ध स्वयं मथुरा पधारे। इस नगरी की कीर्ति से वे प्रभावित हुए होंगे और शायद इसी से उनका यहाँ आगमन हुआ। परन्तु बुद्ध के ऊपर इस नगरी का अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा। यहाँ की राज्य-व्यवस्था में उन्हें कई दोष दिखाई पड़े। साथ ही उन्हें यहाँ की भूमि में कोई आकर्षण नहीं दिखाई दिया। जो बातें महात्मा बुद्ध ने मथुरा में पायी वे ये थीं :—

१. यहाँ की भूमि ऊबड़-खाबड़ थी।
२. धूल और रेत की अधिकता थी।
३. भीषण कुत्तों का यहाँ बड़ा जोर था।
४. जंगली यज्ञ बहुत तंग करते थे।
५. भिक्षा मिलने में कठिनाई होती थी।

मथुरा में बुद्ध के प्रति सम्मान इसलिए न प्रदर्शित किया गया होगा कि उस समय यहाँ वैदिक धर्म का जोर था। लोगों ने स्वभावत अपने धर्म के प्रतिस्पर्धी को अच्छी दृष्टि से नहीं देखा होगा। बुद्ध जी ने जिन यज्ञों का उल्लेख किया है वे यज्ञों के पूजक लोग होंगे। शायद उस समय यज्ञ-मत मानने वाले लोग अच्छी संख्या में मथुरा में थे। इन्हीं लोगों ने बुद्ध को परेशान किया होगा।

मथुरा के आधुनिक कुत्ते भीषणता के लिए प्रसिद्ध नहीं हैं [शायद कायरता के लिए हों], पर हो सकता है कि अब से ढाई हजार वर्ष पहले इनके कुछ पूर्वज व्याघ्रकर्मी रहे हों।

यहाँ की भूमि के सम्बन्ध में प्रकट किए गए बुद्ध के विचार भी ध्यान देने योग्य हैं। मथुरा नगरी के आस-पास उस समय वनों की अधिकता के कारण यहाँ की भूमि का समतल न होना आश्चर्यजनक नहीं कहा जा सकता। समीप में यमुना नदी के होने से रेत की प्रचुरता उस समय भी रही होगी। नदी की धारा के बदलने के साथ-साथ रेतीली भूमि का विस्तार भी बढ़ता रहा होगा।

बुद्ध के ऊपर मथुरा का जो संस्कार पड़ा उसके कारण उन्होंने दुबारा यहाँ आने का नाम नहीं लिया !

बौद्ध साहित्य से पता चलता है कि अवंतिपुत्र के राज्य-काल में राजा चंडप्रद्योत के पुरोहित महाकात्यायन उज्जयिनी से मथुरा आये। प्रद्योत ने उन्हें यहाँ इसलिए भेजा कि वे महात्मा बुद्ध को उज्जयिनी आने का सादर निमंत्रण दे आवें, क्योंकि उस समय बुद्ध मथुरा में ही थे। महाकात्यायन ने यहाँ पहुँचकर बुद्ध के दर्शन किए और उनके उपदेश सुनने के बाद वे इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने तुरन्त बौद्ध धर्म की दीक्षा ग्रहण कर ली। महात्मा बुद्ध महाकात्यायन के प्रति पूर्णतया संतुष्ट होने के बाद उनसे बोले—“भद्र, अब मेरे उज्जयिनी जाने की आवश्यकता नहीं है, अब तुम्हीं जाकर आवश्यक धर्म-प्रचार कर सकते हो।” महाकात्यायन आदेशानुसार मथुरा से उज्जयिनी लौट गए।

बौद्ध ग्रन्थों से यह भी पता चलता है कि मथुरा का राजा अवंतिपुत्र अंत में बौद्ध हो गया। तब से बौद्ध धर्म की ओर मथुरा की जनता की भी सुचि बढ़ने लगी और कुछ समय

बाद यहाँ बौद्धों का एक केंद्र स्थापित हो गया। मौर्यों के शासन-काल में तथा उसके बाद शक-कुषाण काल में चलकर मथुरा में बौद्ध धर्म की बड़ी उन्नति हुई।

मथुरा में जैन धर्म का आरम्भ तथा विकास

मथुरा में जैन धर्म का आरम्भ बौद्ध धर्म की अपेक्षा अधिक प्राचीन है। जैन साहित्य से पता चलता है कि आधुनिक मथुरा नगर के पश्चिम में स्थित कंकाली टीला* पर सातवें तीर्थकर सुपार्श्व की स्मृति में एक सोने का स्तूप बनवाया गया था, जो चमकीले पत्थरों से अलंकृत था। तेईसवें तीर्थकर पार्श्वनाथ के समय (ई० पू० सातवीं शती) में इसके चारों ओर ईटों के एक विशाल स्तूप का निर्माण किया गया, जिसका नाम 'बोद्ध स्तूप' था। उसके बाहर पत्थर का एक मन्दिर बनवाया गया। ई० आठवीं शती में इस की मरम्मत वृषभद्विसूरि ने करवाई।

अब से लगभग ६० वर्ष पहले जब कंकाली टीला की खुदाई कराई गई तो वहाँ अन्य सैकड़ों जैन अवशेषों के साथ एक तीर्थकर मूर्ति की अभिलिखित चौकी मिली, जिस पर दूसरी शती का एक लेख खुदा है। इस लेख में पार्श्वनाथ के समय में निर्मित बोद्ध स्तूप के सम्बन्ध में यह लिखा है कि वह 'देव निर्मित' (देवताओं के द्वारा बनाया हुआ) था।

* इसे आजकल 'जैनी टीला' भी कहते हैं।

† यह मूर्ति उस पर खुदे हुए लेख के अनुसार मुनि सुब्रतनाथ की है, न कि अर्णाथ की। डा० फ्यूरर, स्मिथ आदि ने पाठ में भ्रम के कारण उसे अर्णाथ की माना था।

इसी से अनुमान किया जा सकता है कि उस स्तूप की रचना कितनी सुन्दर रही होगी। तभी तो द्वितीय शती के लोगों तक को यह भ्रम हो गया था कि वह मनुष्य की कृति न होकर देवताओं की कारीगरी है।

ई० सन् के प्रारम्भ से मथुरा में जैन धर्म का प्रभाव बढ़ा। बौद्धों की तरह यह स्थान जैनियों का भी एक बड़ा केन्द्र बन गया। मथुरा नगर तथा उसके आस-पास से जैन धर्म और कला से संबंधित जो अवशेष अब तक मिले हैं उनकी संख्या कई हजार है। कुषाण, गुप्त एवं उत्तर गुप्त कालीन मथुरा में जैन धर्म की बड़ी उन्नति हुई। यहाँ से अंतिम जैन कलाकृतियाँ ई० ११ वीं शती की प्राप्त हुई हैं जिनसे पता चलता है कि उस समय तक जैन मन्दिरों और मूर्तियों आदि का निर्माण मथुरा में होता रहा। इसके बाद मथुरा पर मुसलमानों का आधिपत्य हो जाने से इस धर्म को बड़ा धक्का पहुंचा। अधिकांश जैन स्तूप, मन्दिर आदि ढहा दिये गये और इस प्रकार शताव्दियों की विकसित कला नष्ट कर दी गई।

मगध साम्राज्य के अन्तर्गत मथुरा

[लगभग ई० पू० ४०० से १०० तक]

ई० पू० पाँचवीं शतीके अन्त तक शूरसेन जनपद स्वतंत्र रहा और वहाँ अर्द्धांतपुत्र के वंशज शासन करते रहे। ई० पू० ४०० के लगभग पाटलिपुत्र के नन्दवंशी राजा महापद्मनंद ने

शूरसेन प्रदेश को जीत कर उसे अपने राज्य में मिला लिया। शूरसेन के अतिरिक्त उसने कलिंग, चेदि, मिथिला, काशी, पंचाल, कुरु आदि जनपदों पर भी अधिकार कर लिया। अनेक राज्यों का अंत करने के कारण ही शायद महापञ्चनन्द को पुराणों में ‘अखिलक्ष्मत्रान्तकारी’ तथा ‘एकच्छ्वत्र’ कहा गया है। इन विशेषणों से उसकी साम्राज्यवादी प्रवृत्ति का पता चलता है।

नंदों के बाद मथुरा पर मौर्यवंश का अधिकार हुआ। इस वंश का प्रथम राजा चन्द्रगुप्त था, जिसका नाती अशोक बड़ा प्रसिद्ध शासक हुआ। इसने राजनैतिक विजयों से कहीं अधिक ‘धर्मविजय’ को महत्त्व दिया।

अशोक के शासन-काल में मथुरा में कला की उन्नति हुई। इस काल की बनी हुई कई यज्ञ-प्रतिमाएँ तथा मिट्टी की बहुत सी मूर्तियाँ मथुरा से प्राप्त हुई हैं। इनका विस्तृत वर्णन अगले अध्याय में मिलेगा। अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रचार के लिये बड़ा उद्योग किया। उसके समय में मथुरा में बौद्ध धर्म को प्रोत्साहन मिला होगा। यद्यपि यहाँ अभिलिखित चट्टान या स्तंभ के रूप में अशोक का कोई अवशेष नहीं प्राप्त हुआ है तो भी बौद्ध धर्म के तत्कालीन प्रसार को देखते हुए प्रतीत होता है कि अशोक ने मथुरा-जैसी प्रसिद्ध नगरी में बड़ी संख्या में बौद्ध स्तूपादि का अवश्य निर्माण कराया होगा। चीनी यात्री हुएन-सांग ने लिखा है कि उसके पर्यटन-समय (ईस्वी सातवीं शती) में मथुरा में राजा अशोक के बनवाये हुए तीन स्तूप विद्यमान थे।

परंतु मौर्यों के शासन-काल में मथुरा में वैदिक मत के मानने वालों की संख्या सबसे अधिक रही होगी। अवतार के रूप में वासुदेव श्री कृष्ण की उपासना का प्रचार भी इस समय यहाँ था। साहित्यिक उल्लेखों के अतिरिक्त चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में रहने वाले यूनानी दूत मेगास्थनीज्ज के लेख से इस बात की पुष्टि होती है।

शुंग कालीन मथुरा

ई० पू० १८५ में मौर्यवंश के अन्तिम राजा बृहद्रथ को उसके ब्राह्मण सेनापति पुष्यमित्र ने मारकर साम्राज्य पर अपना अधिकार कर लिया। पुष्यमित्र का वंश शुङ्गवंश कहलाया। शुङ्ग शासक वैदिक धर्म के मानने वाले थे। उनके समय में भागवत मत की विशेष उन्नति हुई। शुङ्ग राजा काशीपुत्र भाग-भद्र के दरबार में तक्षशिला के यवन (ग्रीक) राजा अन्त-लिखित का भेजा हुआ दूत हेलिओदोर आया था। यह भागवत मत का मानने वाला था। इसने विदिशा (आधु० भिलसा, मध्य भारत) के निकट वेसनगर नामक स्थान में देवों के देव वासुदेव कृष्ण का एक गरुडध्वज स्थापित किया, जैसा कि वहाँ पाये गये एक शिलालेख से ज्ञात हुआ है। इससे प्रकट होता है कि ई० पू० दूसरी शतीके मध्य तक कृष्णकी पूजा का प्रचलन मथुरा के बाहर अन्य स्थानों में भी हो चुका था और उन्हें देवों में श्रेष्ठ माना जाने लगा था।

पुष्यमित्र के समय में उत्तर-पश्चिम की ओर से ग्रीक लोगों के आक्रमण साकेत (अयोध्या) तक हुए। वैयाकरण

पतंजलिने, जो पुष्यमित्र के समकालीन थे, अपने महाभाष्य (३, २, १११) में यवनों के द्वारा साकेत और मध्यामिका (आधु० चित्तौड़ से ६ मील उ० पूर्व नगरी नामक स्थान) पर घेरा डालने का उल्लेख किया है। इसी समय के आस-पास यवनों ने मथुरा पर भी आक्रमण किया। गार्गी संहिता में लिखा है कि किस प्रकार दुर्दृष्ट यवनों ने मथुरा, पंचाल देश और साकेत पर आक्रमण कर उन्हें क्षति पहुँचाई और अन्त में वे कुसुमध्वज (पाटलिपुत्र) तक पहुँच गये।

ऐसा प्रतीत होता है कि मथुरा पर यवनों का यह आक्रमण मेनेंडर (मिलिंद) की अध्यक्षता में हुआ। मेनेंडर के सिक्के मथुरा तथा उसके दक्षिण में भी पाये गये हैं। बौद्ध ग्रन्थों से पता चलता है कि यह राजा बौद्ध हो गया था। इसने थेर नागसेन से धर्म संबंधी अनेक जटिल प्रश्न किये थे, जो 'मिलिंदपञ्च' नामक ग्रंथ में दिये हैं। मेनेंडर के कुछ सिक्कों पर बौद्ध चिन्ह धर्मचक्र भी मिलता है और उन पर 'ध्रमिकस' (धार्मिक का) लिखा रहता है।

मथुरा पर शक द्वारा का अधिकार

[लग० ई० पू० १०० से ५७ तक]

लगभग ई० पूर्व १०० तक शुङ्गोंका मथुरा पर शासन रहा। इसके बाद मध्य एशिया से आई हुई शक नामक जाति ने यहाँ अपना अधिकार जमा लिया। तक्षशिला तथा उसके आस-पास के प्रदेश पर इस विदेशी जाति ने कुछ समय पहले से ही

प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। जब शकों ने देखा कि पूर्व में शुज्ञों का शासन ढीला पड़ रहा है तो उन्होंने आक्रमण करके शुज्ञ साम्राज्य का कुछ पश्चिमी भाग अपने अधिकार में कर लिया। उन्होंने मथुरा को इस नवीन विजित प्रदेश की राजधानी बनाया।

मथुरा के शक राजाओं की उपाधि 'क्षत्रप' मिलती है। अधिक प्रतापी शासकों ने बाद में 'महाक्षत्रप' उपाधि धारण करती और उनकी ओर से नियुक्त गवर्नर 'क्षत्रप' कहाने लगे। इनके इतिहास का पता अब तक उपलब्ध अनेक अभिलेखों तथा सिक्कों से चलता है।

सबसे पहले जिन क्षत्रपों ने मथुरा पर राज्य किया वे हगान और हगामष थे। कुछ सिक्के ऐसे मिले हैं जिनसे ज्ञात होता है कि कुछ समय तक इन दोनों ने साथ-साथ राज्य किया। इसके बाद राजुल या रंजुबुल * मथुरा का शासक हुआ। इसका नाम कई लेखों में मिला है तथा इसके सिक्के भी बड़ी संख्या में उपलब्ध हुए हैं, जिनसे पता चलता है कि यह प्रतापी शासक था। इसकी 'महाक्षत्रप' उपाधि से भी ज्ञात होता है कि यह शक्तिशाली राजा था। इसने पूर्वी पञ्चाव के यूनानी राज्य को समाप्त कर वहाँ अपना अधिकार जमाया और इस प्रकार शकों की शक्ति को बहुत बढ़ा लिया।

महाक्षत्रप राजुल की रानी का नाम कंबोजिका था। यह बड़ी धार्मिक स्त्री थी। इसने मथुरा में यमुना-तट पर आधु-

* कहीं-कहीं इसका नाम राजुबुल और रजबुल भी मिलता है।

निक सप्तर्षि टीले के पास एक बौद्ध विहार बनवाया, जिसका नाम 'गुहा विहार' था। साथही उसने यहाँ एक स्तूप भी बनवाया। इसका उज्ज्वल सप्तर्षि टीला से पाये गये एक स्तंभशीर्ष (खंभ का ऊपरी भाग) † पर खुदे हुए खरोष्ठी लेखों में मिला है।

राजुल के कंबोजिका से शोडास नामक पुत्र हुआ जो अपने पिता का उत्तराधिकारी हुआ। उपर्युक्त स्तंभ-शीर्ष पर इसके समय का जो लेख खुदा है उससे पता चलता है कि शोडास ने अपनी माता के द्वारा बनवाए हुए बौद्ध विहार के लिये कुछ भूमि दान में दी। यह दान मथुरा के थेरावाद (हीनयान) मत वाले बौद्धों की सवास्तिवादिन् नामक शाखा के भिक्षुओं के लिये दिया गया। लेखों से यह भी ज्ञात होता है कि उस समय मथुरा के बौद्धों में हीनयान तथा महायान (महासंघिक) — इन दोनों मुख्य शाखाओं के लोग थे और इनमें आपस में धार्मिक वाद—विवाद भी हुआ करते थे। एक बार हीनयान मत वालों ने अपने एक प्रसिद्ध शास्त्रार्थी को सुदूर नगर (आधुनिक जलालाबाद) से मथुरा बुला भेजा जिसने यहाँ पर महायान मतावलंबियों से टकर ली। परंतु मथुरा के परवर्ती धार्मिक इतिहास से विदित हाता है कि अंत में यहाँ महायान की ही विजय रही और उसीके मानने वालों की संख्या मथुरा में अधिक रही।

† यह महत्वपूर्ण अवशेष १८६६ ई० में प्राप्त हुआ था और इस समय लंदन के बृटिश म्यूजियम में है।

शोडास के राज्य-काल के कई लेख मथुरा से मिले हैं, जिन पर उसकी उपाधि प्रायः ‘महाक्षत्रप’ मिलती है। उसके सिक्के भी काफी संख्या में मिले हैं। ये दो प्रकार के हैं—एक वे जिन पर सामने की ओर लक्ष्मी खड़ी है और ब्राह्मी में ‘राजुवुलपुतस खतपस शोडासस’ लिखा है तथा पीछे की ओर लक्ष्मी का अभिषेक दिखाया गया है। दूसरे प्रकार के सिक्कों में अन्य बातें तो पहले-जैसी ही हैं, केवल लेख में ‘महाखतपस पुतस खतपस शोडासस’ मिलता है। इससे ज्ञान होता है कि शोडास के पहली भाँति वाले सिक्के उस समय जारी किये गये होंगे जबकि उसका पिता जीवित था और दूसरी प्रकार वाले राजुल की मृत्यु के बाद, जबकि शोडास को राज्य के पूरे अधिकार प्राप्त हो चुके होंगे।

शोडास के समय के अभिलेखों में सबसे अधिक महत्त्व-पूर्ण वह लेख है जो एक सिरदल (धनी) पर उत्कीर्ण है। यह सिरदल मथुरा छावनी के एक कुण्ड पर मिली थी; वहाँ पर वह कटरा केशवदेव से लाई गई प्रतीत होती है। इस पर १२ पंक्तियों का संस्कृत में एक लेख खुदा हुआ था। दुर्भाग्य से इसकी प्रारम्भ की पाँच पंक्तियाँ नष्टप्राय हो गई हैं, शेष लेख इस प्रकार है—

वसुना भगवतो वासुदेवस्य महास्थान []
 चतुःशालं तोरणं वेदिका प्रतिष्ठापितो
 प्रीतो भवतु वासुदेवः
 स्वामिस्य महाक्षत्रपस्य शोडासस्य सम्वर्तेयाताम् ।

लेख का भावार्थ यह है कि स्वामी महाक्षत्रप शोडास के शासनकाल में वसु नामक व्यक्ति के द्वारा महास्थान (जन्म-

स्थान ?) में भगवान् वासुदेव के एक चतुःशालो मन्दिर, तेरण (सिरदल से सुसज्जित द्वार) तथा वेदिका (चोकी) की स्थापना की गई ।

महाकृत्रप शोडास का शासन-काल ई० पू० ८० से ई० पू० ५७ के बीच माना गया है । अतः वसु के द्वारा मंदिर आदि का निर्माण इसी बीच में कराया गया होगा । यह सबसे पहला अभिलेख है जिसमें मथुरा में कृष्ण-मंदिर के निर्माण का उल्लेख मिलता है ।

शक-कृत्रियों के शासन-काल में वैष्णव धर्म के उत्थान के साथ-साथ जैन एवं बौद्ध धर्म की भी उन्नति हुई । इस काल की जो कला-कृतियाँ प्राप्त हुई हैं उनसे इस बात की पुष्टि होती है । कृत्रप लोग धर्माध नहीं थे और सभी धर्मों की प्रतिष्ठा करते थे । ये शासक विद्या और कला के भी प्रेमी थे । इनके समय में राजकीय पुस्तकालय होने के प्रमाण मिले हैं ।

मथुरा पर शुंगों का पुनः अधिकार

[लग० ई० पू० ५७ से १ तक]

लगभग ई० पू० ५७ में मथुरा से कृत्रियों का शासन उठ गया । इसी समय मालवा में भी उन्हें पराजय मिली । अब किर शुंग लोगों की एक शाखा का मथुरा पर अधिकार हो गया । इस शाखा के शासकों का पता उनके सिक्कों से चला है निम्नलिखित राजाओं के सिक्के प्राप्त हुए हैं—गोमित्र प्रथम तथा द्वितीय, ब्रह्मित्र, हृदित्र, सूर्यमित्र, विष्णुमित्र, गोषदत्त,

पुरुषदत्त, उत्तमदत्त, रामदत्त, कामदत्त, शिवदत्त तथा बलभूति ।^{*} इन सिक्कों पर साधारणतया एक और लक्ष्मी की मूर्ति मिलती है और दूसरी ओर तीन हाथियों की ।

परंतु शुंगों की इस शाखा का मथुरा पर अधिकार बहुत ही थोड़े समय तक रहा । ईस्वी सन् के प्रारंभ होने के आस-पास शकों की कुषाण नामक एक शाखा ने उन्हें परास्त कर मथुरा पर अपना अधिकार जमा लिया ।

कुषाण-काल

[लग० ई० १ से २०० ई० तक]

कुषाण वंश के संस्थापक का नाम कुजुल कैडफाइसिस था । उसका बेटा विम कैडफाइसिस हुआ, जो विम तक्षम के नाम से भी प्रसिद्ध है । विम ने कुषाण राज्य की सीमा काफ़ी बढ़ाली । इसका शासन-काल ४० से ७७ ई० तक रहा । विम ने बड़ी संख्या में साने और ताँबेके सिक्के चलाये । इन सिक्कों पर सोधी और मोटा और लम्बा चोरा, सलवार तथा गिलगिटी जूते पहने हुए राजा की मूर्ति दिखाई देती है और उलटी तरफ नांदी बैल के सहित त्रिशूल-धारी शिव की । सिक्के पर राजा की उपाधियों में एक उपाधि 'माहेश्वरस' भी मिलती है, जिससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि यह राजा शिव का बड़ा भक्त था । इसकी प्रतिमा मथुरा जिले की मांट तहसील के पास से प्राप्त हुई है और स्थानीय संग्रहालय में सुरक्षित है ।

*एलन—कैटलाग आफ दि क्वायंस आफ ऐंश्यंट इंडिया,
पृ० १६६-१८३.

विम का उत्तराधिकारी कनिष्ठक हुआ। यह ७८ ई० में गढ़ी पर बैठा। अपने राज्यारोहण वर्ष से इसने 'शक संवत्' नाम का एक नया संवत् चलाया।

कनिष्ठके समय में कुषाण-राज्य बढ़कर एक साम्राज्य के रूप में होगया। भारत के बाहर अक्षगानिस्तान, काशगर, यारकंद और खोतन इस साम्राज्य के अन्तर्गत थे। भारत में कनिष्ठका आधिपत्य पेशावर से लेकर सारनाथ तक था।

कनिष्ठके ने मथुरा को अपने पूर्वी राज्य की राजधानी बनाया।* इसके समय में यह नगरी एक बड़े नगर के रूप में परिणत होगई। यहाँ धर्म, कला और साहित्य की बड़ी उन्नति हुई। इसके साथ ही मथुरा नगर व्यापार का एक बड़ा केन्द्र होगया। मध्य एशिया, अक्षगानिस्तान, ईरान तथा रोम के यात्री और व्यापारी यहाँ बड़ी संख्या में आने-जाने लगे। इस प्रकार विदेशों के साथ भारत का व्यापारिक सम्पर्क बढ़ाने का माध्यम होने के साथ-साथ मथुरा नगर सांस्कृतिक आदान-प्रदान का भी एक महत्वपूर्ण केन्द्र हो गया।†

*सारनाथ से मिले हुए एक लेख से पता चला है कि कनिष्ठके प्रारंभिक राज्य-काल में उसकी ओर से महाक्षत्रप खरपल्लान मथुरा का शासन-प्रबन्ध देखता था।

†इसी दूसरी शती के यूनानी लेखक एरियन ने अपनी पुस्तक इंडिका में 'मेथोरा' (मथुरा) को एक बड़ा नगर लिखा है, जो यमुना-किनारे बसा था। इस लेखक ने 'क्लीसोबरा' (केशवपुर ?) नामक एक दूसरे बड़े नगर का भी उल्लेख किया है।

कनिष्ठ बौद्ध धर्म का मानने वाला था। उसके समय में मथुरा में इस धर्म की बड़ी उन्नति हुई। बुद्ध की मानुषी रूप में प्रतिमा का निर्माण मथुरा में इसी समय से प्रारंभ हुआ। धीरे-धीरे बड़ी संख्या में बौद्ध प्रतिमाओं का निर्माण यहाँ होने लगा। बौद्ध सत के साथ-साथ यहाँ वैदिक तथा जैन धर्म की भी उन्नति होती रही, जैसा कि इन धर्मों से संबंधित प्राप्त अवशेषों से प्रकट होता है। महायान मत का आचार्य वसुमित्र तथा बुद्ध-चरित एवं सौदर्नन्द आदि ग्रंथों का प्रसिद्ध लेखक अश्वघोष कनिष्ठ की सभा के रूप थे। इनके अतिरिक्त अन्य कितने ही कलाकार एवं विद्वान् कनिष्ठ की सभा में विद्यमान थे।

कनिष्ठ की मृत्यु (१०१ई०) के बाद कुछ दिन वासिष्ठ का शासन रहा और फिर हुविष्ट गही पर वैठा (१०७ई०)। इसके समय में अनेक बौद्ध मन्दिर एवं विहार मथुरा में बने। इनमें सबसे प्रसिद्ध 'हुविष्ट विहार' था। इस राजा के समय के एक लेख से ज्ञात होता है कि मथुरा जिले में मौंट गाँव के समीप एक देवकुल की मरम्मत कराई गई। यह देवकुल हुविष्ट के पितामह के समय बनवाया गया था। इसमें मृत राजाओं की प्रतिमाएँ रखी जाती थीं। यहाँ से अब तक विम, कनिष्ठ और चट्टन की प्रतिमाएँ प्राप्त हो चुकी हैं।

हुविष्ट के बाद मथुरा पर वासुदेव (१३८-१७६ई०) का शासन रहा। यह राजा शैव धर्म को अधिक मानता था, जैसा कि इसके सिक्कों से प्रकट होता है। वासुदेव के समय

के अभिलेख मथुरा से ही मिले हैं, जिससे ज्ञात होता है कि इसके शासन-काल में कुषाण-साम्राज्य का बड़ा धक्का पहुँचा और मथुरा के उत्तर-पश्चिम का बहुत बड़ा इलाका कुषाणों के हाथ से निकल गया। अंत में कुषाणों का राज्य मथुरा के आस पास तथा पञ्चाब के कुछ भाग तक ही सीमित रह गया।

वासुदेव के बाद भी शायद दूसरी शती के अन्त तक उसके उत्तराधिकारी मथुरा पर शासन करते रहे। पर उनकी शक्ति बहुत कमज़ोर थी। मथुरा और उसके समीप इस समय नाग लोगों की शक्ति बढ़ रही थी। उन्होंने शीघ्र ही मथुरा के कुषाण-राज्य का अन्त कर दिया और यहाँ अपना आधिपत्य जमा लिया।

मथुरा में नागों का प्रभुत्व

(लगभग ई० २००--३५०)

नाग लोगों के द्वारा कुषाणों की पराजय मथुरा के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण घटना है। ईस्वी तीसरी शती के प्रारम्भ से मथुरा के विदेशी शासन का अंत हुआ और इस नगर पर नागों का अधिकार हो गया। नाग लोगों के प्रधान केंद्र चार थे—मथुरा, विदिशा, पद्मावती (कालीसिंधु और पारा नदियों के संगम पर दसी हुई वर्तमान पद्मपवाया) तथा कांतीपुरी (वर्तमान कंतित, जिला मिर्जापुर)। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि मथुरा और पद्मावती के नाग एक ही शाखा के थे।

मथुरा-पद्मावती के नाग शासकों के अधिकार में धीरे-धीरे आधुनिक मथुरा, आगरा ज़िलों के अतिरिक्त भाँसी कमिशनरी तथा धौलपुर और गवालियर का बड़ा भाग आगया। इन नागोंकी भारशिव नामक शाखा सदसे अधिक प्रसिद्ध हुई। इस शाखाके राजाओं का चिन्ह शिवलिंग मिलता है तथा उनके सिक्कों पर नांदी बैल और त्रिशूल पाया जाता है। इनके एक राजा भवनाग की लड़की लगभग ३०० ई० में प्रवरसेन वाकाटक के पुत्र गौतमीपुत्र को व्याही गई। वाकाटकों ने अपने प्रायः सभी लेखोंमें इस गौरवजनक संबंध की चर्चाकी है। इन लेखों से यह भी ज्ञात होता है कि भारशिव नागों की शक्ति प्रबल थी तथा उन्होंने दस अश्वमेध यज्ञ किये थे। नागों से वाकाटकों को अपने शक्ति-प्रसारमें काफी सहायता मिली होगी।

पुराणों से पता चलता है कि गुप्तवंश के अभ्युदय के पूर्व मथुरा में सात और पद्मावती में नौ नाग राजा शासन कर चुके थे। मथुरा के राजाओं में वीरसेन सबसे प्रसिद्ध शासक हुआ। इसके सिक्के मथुरा तथा उसके आस-पास से बड़ी संख्या में मिले हैं।

नागों के शासन-काल में मथुरा में हिन्दू धर्म की उन्नति हुई, पर साथ ही अन्य धर्म भी यहाँ विकसित होते रहे। ३१३८०में मथुराके जैन श्वेतांबरोंने यहाँ स्कंदिल नामक आचार्य की अध्यक्षता में एक बड़ी सभा की, जिसमें धार्मिक ग्रंथों के शुद्ध पाठ स्थिर किये गये। इसीवर्ष एक ऐसीही सभा वलभीमें हुई।*

* मजूमदार तथा अल्टेकर-ए न्यू हिस्ट्री आफ दि इण्डियन पीपुल, जिल्द ६, पृष्ठ ३६०-६१

गुप्त कालीन मथुरा

[लगभग ३५० से ४६५ ई० तक]

गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त के राज्यारोहण समय (ई० ३३५) में मथुरा में गणपति नाग का राज्य था तथा पद्मावती में नागसेन का। इन दोनों को समुद्रगुप्त ने ३५० ई० के लगभग परास्त कर दिया और उनका राज्य छीन लिया। अहिच्छुत्रा (बरेली जिला) में इस समय अच्युत नामक राजा राज्य करता था। वह संभवतः मथुरा की नाग शाखा से संबंधित था। उसे भी समुद्रगुप्त ने हरा कर वहां अपना अधिकार स्थापित किया।

इस प्रकार नाग-राज्य की समाप्ति करदी गई। अब नागलोग गुप्तों के मामूली सामंत के रूप में रह गये। समुद्रगुप्त के बाद उसके पुत्र चंद्रगुप्त विक्रमादित्य ने नागों की एक लड़की ('नागकुलोत्पन्ना') से विवाह कर उनका गौरव बढ़ाया। इस लड़की का नाम कुवेरनागा था। इससे प्रभावती गुप्ता का जन्म हुआ, जो वाकाटक रुद्रसेन द्वितीय को व्याही गई।

चंद्रगुप्त द्वितीय के दो लेख मथुरा से प्राप्त हुए हैं, जिससे पता चलता है कि उसके समय में यह प्रदेश गुप्त साम्राज्य के ही अन्तर्गत था। ऐसी स्थिति स्कंदगुप्त के अंतिम वर्षों में लग० ४६५ ई० तक बनी रही। चंद्रगुप्त ने सभवतः कृष्ण के जन्मस्थान पर उनके एक भव्य मन्दिर का निर्माण कराया, जिसे १०१७ ई० में महमूद ने नष्ट कर दिया।

गुप्त लोग यद्यपि वैष्णव थे तो भी उनका सब मतों के प्रति आदर था। उनके शासन-काल में मथुरा में वैष्णव मत के अतिरिक्त अन्य हिंदू मत तथा बौद्ध एवं जैन धर्म समान रूप से विकसित होते रहे। लगभग ४०० ई० में चीनीयात्री फाह्यान मथुरा आया और यहां लगभग एक मास तक रहा। उसके लेख से विदित होता है कि तत्कालीन मथुरा में बौद्ध धर्म का जोर था। उसने लिखा है कि “पूना (यमुना) नदी के दोनों ओर बीस बौद्ध संघाराम हैं, जिनमें लगभग ३००० भिक्षु निवास करते हैं।” फाह्यान ने यहांके ६ बौद्ध स्तूपों की भी चर्चा की है, जिनमें सबसे प्रसिद्ध वह था जो सारिपुत्र के सम्मान में बनवाया गया था और शेष अन्य लोगों के स्मारक रूप में बने थे। इस यात्री के लेख से यह भी ज्ञात होता है कि मथुरा को छोड़ ‘मध्य देश’ के अन्य स्थानों में हिंदू धर्म की प्रधानता थी।

इस प्रकार फ़ाह्यान के लेख से तत्कालीन मथुरा की धार्मिक स्थिति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है और यह प्रकट होता है कि यह नगर सभी मतों को आश्रय देने वाला था। इतना ही नहीं, पुरातत्व संबंधी अवशेषों से यह भी ज्ञात होता है कि विभिन्न मतों के अनेक केंद्र (मन्दिर, मठ आदि) एक दूसरे के बिलकुल पास ही पास स्थित थे। इससे प्राचीन मथुरा में धार्मिक उदारता एवं सहिष्णुता का परिचय मिलता है।

गुप्त कालीन साहित्य में मथुरा-संबंधी जो वर्णन मिलते हैं उनसे पता चलता है कि यह नगर इस काल में भारत का प्रमुख धार्मिक एवं सांस्कृतिक केंद्र बन गया था और इसकी ख्याति दूर-दूर तक फैल गई थी।

गुप्त-शासन के बाद मथुरा की दशा

[लगभग ४६५ से ११६४ ई० तक]

लगभग ४६० ई० में बर्बर हूणों ने भारत के उत्तर-पश्चिम की ओर से घुस कर काश्मीर और पञ्चाब को रौंद डाला। इसके बाद मथुरा और भरतपुर पर उन्होंने आक्रमण किये। स्कंदगुप्त के शासन के अन्तिम वर्षों में हूणों के आक्रमण के कारण गुप्त साम्राज्य की नींव हिल गई। हूणों के नायक तोरमाण ने गुप्त साम्राज्य के पश्चिमी भाग पर अधिकार करलिया। इस अधिकृत भाग में मथुरा भी कुछ समय के लिये शामिल रहा। हूणों ने तक्षशिला आदि स्थानों की बौद्ध इमारतों को नष्ट-भष्ट कर बौद्ध धर्म^१ को अपार हानि पहुँचाई थी। वही क्रिया उन्होंने मथुरा पर भी दोहराई। बौद्ध कृतियों के साथ उन्होंने यहाँ स्थिति अन्यधर्म संबंधी इमारतों आदि को भी बड़ी संख्या में नष्ट किया। भारतीय शासक कुछ काल तक हूणों को दबाने में असमर्थ रहे। तोरमाण तथा उसके पुत्र मिहिरकुल हूण ने अपनी शक्ति बढ़ाली और दक्षिण में ग्वालियर तक अपना सिक्का जमा लिया। अन्त में यशोधर्मा तथा बालादित्य ने मिल कर ५३० ई० के लगभग मिहिरकुल को परास्त किया और उसे काश्मीर की ओर भगा दिया।

हूणों के पलायन के बाद मथुरा पर फिर स्वतन्त्र भारतीय राज्य स्थापित हुआ। परन्तु ६० छठी और सातवीं शती में यहाँ कौन-कौन से शासक हुए, यह निश्चित रूप से नहीं बताया जा सकता। कन्नोज के राजा हर्षवर्धन के समय में

भारत आये हुए चीनी यात्री हुएन-सांग के लेख से पता चलता है कि ई० सातवीं शती के पूर्वार्ध में मथुरा प्रदेश हर्ष के साम्राज्य के बाहर था। मथुरा और मतिपुर (आधुनिक विजनौर जिला) के राज्यों को छोड़ कर लगभग सारा उत्तर प्रदेश (य० पी०) हर्ष के साम्राज्य में शामिल था।

हुएन-सांग का मथुरा-वर्णन

हुएन-सांग ने मथुरा नगर का जो मनोरञ्जक हाल लिखा है उसे हम यहाँ संक्षेप में उद्धृत करते हैं। उसने लिखा है कि “इस नगर का विस्तार २० ली (३। मील) है। यहाँ की भूमि उत्तम और उपजाऊ है। यहाँ आम बहुत उत्पन्न होता है, जो छोटा और बड़ा दो प्रकार का होता है। यहाँ बढ़िया कपास भी पैदा होती है और पीला सोना भी पाया जाता है।”

यहाँ के निवासियों की बाबत उसने लिखा है कि “उनका स्वभाव कोमल है और दूसरों के प्रति उनका व्यवहार आदरणीय है। यहाँ के लोग तत्त्वज्ञान का गुप्त रूप से अध्ययन करना पसन्द करते हैं। वे परोपकारी हैं और विद्या के प्रति बड़े सम्मान का भाव रखते हैं।”

तत्कालीन धार्मिक स्थिति का परिचय हुएन-सांग के निम्नलिखित वर्णन से प्राप्त होता है—“इस नगर में लगभग २० संघाराम (बौद्धों के मठ) हैं, जिनमें २,००० भिक्षु रहते हैं। इन भिक्षुओं में हीनयान और महायान इन दोनों मतों के मानने वाले हैं। यहाँ पाँच देवमन्दिर भी हैं, जिनमें बहुत से साधु पूजा करते हैं। राजा अशोक के बनवाये हुए

तीन स्तूप यहाँ विद्यमान हैं। विगत चारों बुद्धों के भी अनेक चिन्ह यहाँ दिखाई देते हैं। तथागत भगवान् (गौतम बुद्ध) के साथियों के पवित्र अवशेषों पर भी स्मारक रूप में कई स्तूप बने हुए हैं। विभिन्न धार्मिक अवसरों पर लोग बड़ी संख्या में इन स्तूपों का दर्शन करने आते हैं। कोई-कोई उत्सव बड़ी धूमधारा से मनाये जाते हैं। नगर से ५-६ ली (लगभग १ मील) की दूरी पर उच्चार्ड पर बना हुआ एक संघाराम है, जिसके किनारे किनारे गुफाएँ हैं। पास में एक स्तूप है जहाँ तथागत के नाखून रखे हैं। संघाराम के उत्तर में पत्थर की एक कोठरी है, जिसमें आचार्य उपगुप्त का कभी निवास रहता था।”

हुएन-सांग के उपर्युक्त वर्णन से पता चलता है कि सातवीं शती में मथुरा नगर बौद्ध धर्म का अच्छा केंद्र था और यहाँ अनेक बौद्ध विहार और स्तूपादि थे। पर फ़ाद्यान के समय (ई० ४००) को देखते हुए अब बौद्ध मतावलम्बियों की संख्या में कमी आगई थी। फ़ाद्यान ने लिखा है कि उसके समय में बीस बौद्ध मठ थे जिनमें ३,००० भिक्षु रहते थे। हुएन-सांग के समय में मठों की संख्या तो उतनी ही थी, पर बौद्ध संन्यासी ३,००० के बजाय २,००० ही रह गये थे। इसके समय में हिंदू धर्म का उत्थान हो रहा था। इस यात्री ने ५ हिन्दू मन्दिरों का उल्लेख किया है। हुएन-सांग ने तत्कालीन मथुरा के जैन धर्म पर प्रकाश नहीं डाला। परंतु प्राप्त पुरातत्त्व संबंधी अवशेषों से ज्ञात होता है कि इस समय मथुरा में जैन धर्म भी उन्नति पर था और नगर में उसके कई केंद्र स्थापित हो चुके थे।

हुएन-सांग की यात्रा के बाद मथुरा संबंधी वृत्तान्त बहुत कम मिलता है। लगभग ई० ७०० से १२०० तक की जो प्राचीन कलाकृतियाँ अब तक उपलब्ध हुई हैं उनसे पता चलता है कि इस काल में यहाँ पौराणिक हिंदू धर्म की बड़ी उन्नति हुई। श्री कृष्ण की जन्म-भूमि होने के कारण मथुरा का महत्त्व इस काल में बहुत बढ़ा। देवाधिदेव भगवान् के रूप में उनकी उपासना बहुत पहले प्रचलित हो चुकी थी। इस काल में उनके अनेक मन्दिरों का यहाँ निर्माण हुआ होगा। सं० १२०७ (११५० ई०) का एक बड़ा लेख मथुरा से प्राप्त हुआ है, जिससे पता चलता है कि उस समय यहाँ राजा विजयपालदेव का राज्य था। उसके समय में श्री कृष्ण का एक विशाल मन्दिर जन्मस्थान पर बनवाया गया। इस मंदिर के प्रबंध के लिये मथुरा के १४ प्रधान नागरिकों की एक गोष्ठी (समिति) नियुक्त की गई।

ई० सातवीं शती से बारहवीं शती तक का मथुरा का क्रमबद्ध राजनैतिक विवरण नहीं उपलब्ध होता। इस बीच में मथुरा के केवल दो राजाओं के नाम मिलते हैं—एक विजयपालदेव का और दूसरा महमूद शज्जनवी के समकालीन राजा कूलचंद का। संभवतः विजयपालदेव के पहले उसके पूर्वजों का ही यहाँ आधिपत्य था। विजयपालदेव और कूलचंद किस वंश के थे, यह हम निश्चयपूर्वक नहीं बता सकते। हर्ष के बाद उत्तर भारत में ललितादित्य तथा यशोवर्मन का कुछ समय तक प्रभाव रहने के बाद क्रमशः आयुध वंश, गुर्जर प्रतीहार वंश तथा गाहड़वाल वंश का शासन रहा। इन वंशों ने अपना केंद्र कन्नोज का बनाया। कन्नोज राज्य की उन्नति

के साथ-साथ मथुरा राज्य का प्रभाव घटता गया। इसका बहुत बड़ा भाग उपर्युक्त वंशों के शासकों ने कन्नौज राज्य में मिला लिया होगा। १२ वीं शती में दिल्ली और अजमेर के शक्तिशाली चाहमान या चौहान राजाओं ने भी मथुरा राज्य को थोड़ा बहुत दबोचा होगा। इस शती का अंत होते-होते मथुरा नगर का राजनैतिक महत्व समाप्तप्राय हो गया। उसके समीप के आगरा, दिल्ली तथा दूर के अजमेर और कन्नौज नगर उत्तर भारत के प्रधान राजनैतिक केंद्र बने, जबकि मथुरा उत्तर भारत का प्रमुख वैष्णव तीर्थ बन गया।

महमूद गज्जनवी का आक्रमण

वैष्णव तीर्थ के रूप में मथुरा की रुयाति की भनक 'मूर्ति-भञ्जक' महमूद के कानों में भी पड़ी होगी। वह भला इसे कैसे सहन कर सकता था? फलस्वरूप १०१७ ई० में उसने भारत पर होने वाले अपने नवें आक्रमण का निशाना मथुरा को ही बनाया। उसके मन्त्री अल उत्त्वी ने इस आक्रमण का वर्णन अपनी किताब 'तारीखे यामिनी' में किया है। उससे पता चलता है कि इस समय मथुरा प्रदेश पर कूलचंद नामक राजा का राज्य था, जो बड़ा प्रतापी और समृद्ध था। जब बरन (बुलन्दशहर) के किले को जीतने के बाद महमूद दक्षिण की ओर बढ़ा तो कूलचंद ने 'बड़े जंगल' (महावन) में अपनी सेना संगठित कर हमले को रोका। पर उसे सफलता न मिली, जिससे राजा ने निराश होकर अपनी और अपनी रानी की हत्या कर डाली।

महमूद ने महावन को लूटने के बाद मथुरा को लूटा।

मंदिरों से उसे बड़ी धनराशि मिली। हिंदुओं का सबसे बड़ा केशवदेव वाला मंदिर, जो संभवतः चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के समय में बना था और अब तक अच्छी दशा में था, गिरा दिया गया। अनेक मंदिर जला दिये गये। मुसलमानों ने २० दिन तक बराबर लूट-मार जारी रखी। हिंदुओं के कुछ मंदिर तथा जैनियों के कंकाली टीले पर स्थित मंदिर बर्बाद होने से बच गये। शायद उनके अत्यंत सुन्दर स्थापत्य से प्रभावित होकर ही महमूद ने उन्हें नहीं गिरवाया। महमूद मथुरा से ५००० हिंदुओं को बंदी बनाकर तथा लगभग तीस लाख रुपये का माल लेकर लौट गया। मंदिरों से उसे पाँच सोने की बड़ी मूर्तियाँ मिलीं, जिनकी आंखें लाल तथा हीरों आदि से जड़ी हुई थीं। सोने-चाँड़ी की छोटी मूर्तियाँ का कोई शुमार न था। हूणों के आक्रमण के बाद मथुरा की यह पहली बड़ी बर्बादी हुई।

मथुरा पर मुसलमानों का शासन

[११६४ से १५२५ ई० तक]

मुहम्मद गोरी के द्वारा अजमेर के चौहान राजा प्रध्वी-राज तथा कन्नौज के गाहड़वाल राजा जयचंद्र की पराजय के बाद दिल्ली से लेकर कन्नौज तक के इलाके पर मुसलमानों का अधिपत्य स्थापित हो गया। दिल्ली को उन्होंने अपनी राजधानी बनाया। ११६४ ई० तक मथुरा और आगरा भी उनके अधिकार में आ गये।

तेरहवीं शती के प्रारंभ से लेकर १५२५ ई० तक दिल्ली पर क्रमशः गुलाम, खिलजी, तुगलक, सय्यद तथा लोदी वंशों

का प्रभुत्व रहा। मथुरा नगर भी तदनुसार इन वंशों के शासकों के अधीन रहा। इनमें से अधिकांश की वक्र हृष्टि इस नगर पर रही, क्योंकि यह वैष्णव धर्म का उत्तर भारत में प्रधान केंद्र था। नीन शतियों से ऊपर के इस काल में मथुरा की कई बार बर्दी की गई। परंतु इस नगर का सबसे बड़ा विध्वंस लोदी वंश के शासक सिकंदर लोदी (१४८८—१५१६ ई०) के समय में हुआ। 'तारीखे दाऊदी' के लेखक अब्दुल्ला ने लिखा है कि 'सिकंदर के समय में मथुरा के मंदिर पूरी तरह नष्ट कर दिये गये। एक भी धार्मिक स्थान अद्वृता नहीं छोड़ा गया, बड़े मंदिरों के स्थान पर सरायें बना दी गयीं। मंदिरों की मूर्तियाँ कसाइयाँ को दे दी गयीं कि वे उन्हें माँस तोलने के लिये बाँटों के काम में लावें। सिकंदर ने यह आज्ञा दे दी कि मथुरा का कोई भी हिंदू अपने सिर के बाल और दाढ़ी नहीं मुड़वा सकता और न कोई धार्मिक कृत्य कर सकता है। यदि कोई हिंदू [लुक-छिप कर] अपने बाल बनवाने की चेष्टा भी करता तो उसे एक भी नाई न मिल सकता था।'

एक मुसलमान द्वारा लिखे हुए इस वर्णन से तत्कालीन मथुरा की स्थिति का पता लगाया जा सकता है। जन्म-स्थान पर विजयपाल देव के समय (११५० ई०) में दनवाये गए विशाल केशवदेव मंदिर का भी विध्वंस सिकंदर लोदी ने ही कराया होगा। इस प्रकार दिल्ली सुलतानों के शासन-काल में मथुरा पर आपत्ति के बादल बराबर घिरे रहे और यहाँ का सांस्कृतिक एवं धार्मिक जीवन लगानार विकट समस्याओं से त्रस्त बना रहा।

मुगल साम्राज्य के अंतर्गत मथुरा

[१५२६—१७१८ ई०]

१५२६ ई० में बाबर ने इब्राहीम लोदी को हराकर दिल्ली पर अधिकार कर लिया। इस समय महावन में मरगूव नामक एक गुलाम शासक नियुक्त था।* इस विजय से भारत में मुगलों का शासन स्थापित हुआ। मथुरा भी मुगल राज्य के अंतर्गत हो गया। बाबर और हुमायूँ के शासन-काल में मथुरा का वृत्तांत केवल इतना मिलता है कि इस नगर के आस-पास बड़े जंगल थे। बाबर ने इन जंगलों में शिकार खेले, जिनका वर्णन उसने स्वयं किया है। अकबर, जहाँगीर, नूरजहाँ और शाहजहाँ ने भी इन वनों में शिकार खेले। नूरजहाँ की वाबत लिखा मिलता है कि उसने यहाँ एक चीते को मारा। शाहजहाँ ने १६३४ में नदी के उस पार महावन के जंगलों में चार शेरों का वध किया। इससे मालूम होता है कि मुगल काल में मथुरा के सभीप के जंगलों में शेर-चीते पाये जाते थे।

शेरशाह के शासन-काल (१५४०—४५ ई०) में दिल्ली से आगरा तक पक्की सड़क बनवाई गई। यह सड़क मथुरा नगर से गुजरती थी। इसके बनने से यातायात में पहले से सुविधा हो गई। पर शेख नूरुल हक्क नामक मुसलमान लेखक ने लिखा है कि मथुरा के आस-पास घने जंगल होने तथा

* दिल्ली के परवर्ती सुलतानों ने मथुरा और उसके आसपास के प्रदेश के लिए शासन का केन्द्र मथुरा नगर को न बना कर महावन को बनाया था।

उनमें डाकुओं की अधिकता के कारण इधर की यात्रा खनरे से खाली न रहती थी।

अकबर का शासन-काल (१५८५—१६०५ ई०) मथुरा के इतिहास में महत्वपूर्ण समय हुआ। हिंदू धर्म के प्रति उसकी सहानुभूति ने इस सम्राट् को मथुरा की ओर भी आकृष्ट किया। अकबर स्वयं एक चार वृन्दावन आया और यहाँ के स्थानों तथा प्रसिद्ध संतों के दर्शन का उस पर दड़ा प्रभाव पड़ा। उसके दिल्ली लौटने के बाद वृन्दावन में गेविंद देव, मदनमोहन आदि चार मंदिरों का निर्माण हुआ। गेवर्धन में हरिदेव का मंदिर भी अकबर के शासन-काल में बनवाया गया। १५९० ई० में जयपुर के राजा भगवान दास ने मथुरा में उस स्थान पर जहाँ उनकी माँ सती हुई थीं एक चौखंडा बुर्ज बनवाया। यह अब तक सुरक्षित है और 'सती बुर्ज' के नाम से प्रसिद्ध है।

अकबर के समय में जमीन का जो नया बन्दोबस्त हुआ उसमें मथुरा प्रदेश आगरा सूचा के अंतर्गत किया गया और मालगुजारी की सुविधा के लिये वह तीन 'सरकारों' में बांट दिया गया। आगरा सरकार के अंतर्गत मथुरा के ६ 'महाल' रखे गये—मथुरा, ओल, मंगोतला, महावन, महोली और जलेसर। इनमें मथुरा महाल का विस्तार ३९,३४७ बोधा था और उसकी मालगुजारी ११,५५,८०७ दाम थी।*

अकबर का शासन-काल मथुरा में कलात्मक एवं सांस्कृतिक पुनरुत्थान के लिए भी प्रसिद्ध है, जिसके दर्शन

* ड्रेक ब्राकमैन—मथुरा गजेटियर पृ० १६२।

हमें तत्कालीन चित्रकला, संगीत तथा सबसे अधिक जभाषा साहित्य की उत्कृष्ट रचनाओं के रूप में मिलते हैं ॥ इसकी विस्तृत चर्चा हम अगले अध्याय में करेंगे ।

अकबर के बाद जहाँगीर के राज्य-काल की सबसे अधिक उल्लेखनीय घटना यह है कि श्री कृष्ण जन्म-स्थान पर ओड़छा के राजा वीरसिंहदेव ने तेंतीस लाख रुपया व्यय करके केशव भगवान् का एक विशाल मन्दिर बनवाया । १६५० ईस्थी के लगभग इस मन्दिर को अंग्रेजी यात्री टैवर्नियर ने देखा । इसके बाद १६६३ ई० में बनिर्यर ने भी इसके दर्शन किये । पहले यात्री ने इसकी वाबत ज लिखा है वह संक्षेप में इस प्रकार है—

“जगन्नाथ और बनारस के मन्दिरों के बाद मथुरा का मन्दिर सबसे अधिक विख्यात है । यह आगरा से लगभग १८ कोस दूर है । यह एक बड़ा विशाल मन्दिर है । पहले यहां यात्री बहुत बड़ी संख्या में आते थे, पर अब उनकी संख्या कम हो गई है, क्योंकि यमुना की धारा मन्दिर से दूर हट गई है । मन्दिर इतना ऊँचा है कि वह ५-६ कोस की दूरी से भी दिखाई पड़ता है । यह स्थापत्य की एक अत्यन्त सुन्दर कृति है । इसका पत्थर लाल है और आगरे से लाया गया है । मन्दिर एक बड़ी अठपहलू कुर्सी पर बना है । इसके सब ओर नक्काशीदार पत्थर लगे हैं, जिनमें जानवरों आदि की भाँति-भाँति की मूर्तियाँ खुदी हैं । विस्तृत चबूतरे के ऊपर आधे में तो मन्दिर बना है और शेष में जगमोहन है । मन्दिर के बीच वाला शिखर बहुत ही ऊँचा है, अन्य उससे छोटे हैं ।

मन्दिर में चारों ओर अनेक खिड़कियाँ और गवाह बने हैं ।... मण्डप के अन्दर बनी हुई जालीदार दीवाल के पास से मुझे मूर्ति का दर्शन कराया गया । मैंने देखा कि मूर्ति काले पत्थर की बनी है और बहुमूल्य वस्त्रों तथा आभूषणों से सुसज्जित है । उसके अगल-बगल दो छोटी मूर्तियाँ भी रखी हुई थीं ।” *

बर्नियर ने लिखा है कि उसके समय में दिल्ली और आगरा के बीच केवल मथुरा का प्राचीन एवं विशाल मन्दिर ही ऐसा था जो सबसे अधिक उल्लेखनीय कहा जा सकता था ।

जहाँगीर के पश्चात् शाहजहाँ के शासन काल में मथुरा में कोई विशेष घटना नहीं हुई । हाँ, उसके कुछ स्थानीय मुसलमान शासकों ने मथुरा में कई बड़ी सरायें बनवाईं ।

औरंगजेब का समय (१६५८--१७०७ ई०) मथुरा के इतिहास में बड़ा रोमाञ्चकारी काल हुआ । इसके बड़े पुत्र मुहम्मद सुलतान का यहीं जन्म हुआ था जिसे औरंगजेब ने कारावास में सड़ा कर यमलोक का मार्ग दिखाया । मथुरा में ही १६५८ ई० में औरंगजेब ने अपने भाई मुराद के साथ विश्वासघात कर उसे बन्दी बनाया और फिर यहाँ से उसे दिल्ली भेज दिया । १६६० ई० में उसने अब्दुलनबी को मथुरा का शासक बनाकर भेजा । नबी ने सामूगढ़ के युद्ध में दारा-शिकोह का साथ दिया था, पर औरंगजेब की विजय होने पर वह नये विजेता का भक्त बन गया ।

* ग्राउज़—मथुरा मेम्बायर, पृ० ११८-११९ ।

अब्दुल-नवी ने मथुरा नगर को नये ढंग पर बसाया। वर्तमान शहर की कई सड़कों, भीतरी गलियां तथा बाजार का रूप उसी के समय में बना। उसने शहर के बीचो-बीच मुख्य स्थान पर एक बड़ी मस्जिद बनाने का निश्चय किया। इस स्थान पर किसी समय एक विशाल हिंदू मंदिर था, जिसे सिकंदर लोदी ने धराशायी करवा कर उस जमीन पर कसाइयों को बसा दिया था। अब्दुल-नवी के समय कसाइयों का ही अधिकार वहाँ पर चला आता था। नवी ने वह जमीन उन से खरीद कर वहीं १६६१ ई० में अपनी विशाल मस्जिद बनवाई। इसका नाम 'जुम्मा मस्जिद' रखा गया। यह मस्जिद अब भी चौक में विद्यमान है। उँचाई में यह शहर की सभी वर्तमान इमारतों में बड़ी है।*

* मथुरा के पुरातत्त्व संग्रहालय में शहर के प्रमुख भाग का एक चित्र (साइज २६" X २१") है, जो १७८६ से १७८२ ई० के बीच में किसी समय टामस तथा विलियम डेनियल नाम के दो युरोपीय कलाकारों द्वारा मथुरा में यमुना के परली पार से लिया गया था। यह चित्र इन कलाकारों के द्वारा भारत के अन्य स्थानों में बनाए गए दूसरे कई चित्रों के सहित १८०३ ई० में हिस्टारिक गैलरी, पाल माल लंदन, द्वारा प्रकाशित किया गया। इसमें जुम्मा मस्जिद का सुन्दर रूप दिखाई पड़ता है। जिस समय यह चित्र लिया गया था उस समय मस्जिद के सामने यमुना-किनारे तक कोई बस्ती नहीं थी। ऐसा प्रतीत होता है कि नदी की धारा उस समय कुछ और अंदर की ओर थी, जिससे मस्जिद और नदी के बीच में फासला उतना नहीं था जितना कि अब है। १५ वीं शती के अन्त में जब कि सिकंदर लोदी ने इस मस्जिद के स्थान पर स्थित तत्कालीन बड़ा मंदिर तोड़ा होगा

१६६८ई० में महावन के लोगों ने मुगल शासन के खिलाफ विद्रोह कर दिया। नवी उसे दबाने के लिए वहाँ पहुँचा। पर कोकिल नामक जाट सर्दार की अध्यक्षता में लोगों ने उसकी सेना को परास्त किया और नवी को खत्म कर दिया।

नवी की मृत्यु का समाचार पाकर औरंगजेब बहुत कुछ हुआ। वह अगले साल खुद मथुरा आ पहुँचा। मानों नवी की मौत इस नगर की बर्बादी का पैगाम लेकर आ गई हो। औरंगजेब ने सबसे पहले केशवदेव के उस विशाल मंदिर को ढहाने की आज्ञा दी जो लगभग ५० वर्ष ही पहले वीरसिंह देव के द्वारा बनवाया गया था और जिसके सौंदर्य पर मुग्ध होकर कुछ ही साल पूर्व औरंगजेब के बड़े भाई दाराशिकोह ने मंदिर के चारों ओर एक चारदीवारी बनवा दी थी।

इस मजबूत मंदिर को ढहा देना हँसी-खेल न था। मुसलमान इतिहासकारों ने लिखा है कि बड़ी मुश्किलों से यह मंदिर गिराया जा सका। मंदिर की प्रधान मूर्ति को, जिसके दर्शन टैवनिंयर ने किये थे, अनिष्ट की आशंका से कुछ समय

तो उस समय नदी की धारा मंदिर के नीचे से या उससे थोड़ी ही दूर पर बहती रही होगी। उपर्युक्त चित्र के देखने से पता चलता है कि परली पार में यमुना-तट पर १८ बीं शती के अन्त में कई सुन्दर घाट थे। उनमें से कुछ के अवशेष अब भी दिखाई पड़ते हैं। चित्र में 'कंसकिला' का जो दृश्य दिखाई पड़ता है उससे प्रकट है कि वह अब से लगभग १६० वर्ष पूर्व प्रायः अभग्न दशा में था।

पहले ही मेवाड़ के राना राजसिंह अपने साथ ले गये थे और उसे उदयपुर से २२ मील उत्तर-पूर्व वर्तमान नाथद्वारा में प्रतिष्ठापित कर दिया था।

केशवदेव के मंदिर को पूर्णतया नष्ट करने के बाद औरंगजेब ने उसकी छोटी-बड़ी सभी मूर्तियाँ, जो कीमती जवाहरातों से जड़ी थीं, आगरे भेज दीं। वहाँ वे नवाब कुदसिआ वेगम की मस्जिद की सीढ़ियों के नीचे गाड़ दी गयीं, जिससे लोगों के पैर सदा उनके ऊपर पड़ते रहें। मंदिर की अवशिष्ट बड़ी कुर्सी पर सामने के लगभग आधे भाग के ऊपर एक बड़ी मस्जिद बनवाई गई, जो अब ईदगाह मस्जिद कहलाती है।

इसके अनन्तर औरंगजेब ने मथुरा-वृन्दावन के अन्य कितने ही मंदिरों को ढहवाया। उसने इन दोनों नगरों की बर्बादी के बाद उनका प्राचीन नाम ही नष्ट कर देने का इरादा कर लिया। वृन्दावन का नाम बदलकर मोमीनाबाद रखा

† ग्राउज़-मथुरा मेम्बायर, पृ० ३६

¶ इस मस्जिद के निर्माण में तोड़े हुए मंदिर के बहुत से पत्थर इस्तेभाल किये गये। कितने ही कामदार पत्थर अब भी इसमें लगे हुए दिखाई पड़ते हैं। फर्श पर नागरी लिपि में लिखे हुए दो लेख लगे हैं—एक पर संवत् १७१३ (१६५६ ई०) खुदा है और दूसरे पर सं० १७२० (१६६३ ई०)। ये दोनों लेख मंदिर का दर्शन करने के लिए आये हुए यात्रियों के द्वारा मंदिर की फर्श पर लगवाये गये होंगे।

गया और मथुरा का इस्लामपुर या इस्लामाबाद। परंतु औरंगजेब का यह स्वप्न पूरा न हो सका। श्री ग्राउज लिखते हैं—

“The climax of wanton destruction was, however, attained by Aurangzeb, the Oliver Cromwell of India, who, not content with demolishing the most sacred of its shrines, thought also to destroy even the ancient name of the city by substituting for it Islampur or Islamabad”. †

अर्थात् “[मंदिरों आदि की] बेलिहाज़ वर्वादी की हद ‘भारत के ओलिवर क्रामवेल’ औरंगजेब ने कर दी, जिसे मथुरा के सबसे पवित्र मंदिर [केशवदेव] को नष्ट करने पर भी संतोष नहीं हुआ और जिसने यहाँ तक इरादा कर लिया कि मथुरा का नाम इस्लामपुर या इस्लामाबाद रखकर इस नगर के प्राचीन नाम को ही नष्ट कर दिया जाय।”

औरंगजेब ने १७०७ई० में इस दुनिया से कूच किया। उसके मरने के बाद मुगल साम्राज्य छिन्न-भिन्न होने लगा। चारों ओर विद्रोह के बादल उठ खड़े हुए। आगरा-भरतपुर में जाटों की शक्ति प्रवल हुई और वे मुगलों से लोहा लेने लगे। कुछ समय बाद ही जाटों ने भरतपुर और आगरा के अलावा मथुरा पर भी अधिकार कर लिया।

मथुरा पर जाटों का प्रभुत्व

[लग० १७१८ से १७६७ ई० तक]

जाटों का पहला शक्तिशाली सर्दार चूड़ामनि था। उससे मुगल शासक घबड़ाते थे। उसके छोटे भाई बदनसिंह ने जाटों की ताकत को बढ़ाया और मथुरा जिले के सहार नामक स्थान में एक बड़ा महल बनवाया। बदनसिंह के प्रतापी पुत्र सूरजमल के समय में जाटों की शक्ति चरमसीमा को पहुँच गई। अपने पिता की मृत्यु के बाद उसने 'राजा' उपाधि धारण कर ली। उसने भरतपुर को अपने विस्तृत राज्य का केन्द्र बनाया। उसकी मृत्यु (१७६४ ई०) पर्यन्त मथुरा उसके शासन के अंतर्गत रहा।

अहमदशाह अब्दाली का आक्रमण

परंतु १७५७ ई० में मथुरा को फिर एक बार भीषण विध्वंस का शिकार होना पड़ा। यह विध्वंस अहमदशाह अब्दाली के द्वारा किया गया। मुसलमान लेखकों ने इस आक्रमण का विस्तृत वर्णन किया है, जो संक्षेप में इस प्रकार है—

बलभगड़ में जाटों को परास्त करने तथा उस नगर में लूट-मार करने के बाद अब्दाली ने उपने दो सर्दारों—जहानखाँ और नजीब—को २०,००० सिपाही देकर उनसे कहा—“जाटों के इलाकों में घुस पड़ो और उनमें लूटो-मारो। मथुरा नगर हिदुओं का पवित्र स्थान है, उसे पूरी तरह नेस्तनाबूद कर दो। आगरा तक एक भी इमारत खड़ी न दिखाई पड़े। जहाँ कहीं

पहुँचो, कत्ले-आम करो और लूटो। लूट में जिसको जो मिलेगा वह उसी का होगा। सिपाही लोग काफिरों के सिर काटकर लावें और प्रधान सर्दार के खेमे के सामने डालते जाँच। सरकारी खजाने से प्रत्येक सिर के लिये पांच रुपया इनाम दिया जायगा।”

इस आज्ञा का अक्षरशः पालन हुआ। पहले अफगान सेना मथुरा की ओर ही चल पड़ी। रास्ते में चौमुहां (मथुरा से ८ मील उत्तर) स्थान पर सूरजमल के लड़के जवाहरसिंह के नेतृत्व में जाटों ने इस सेना का कड़ा सुकाढ़ला किया। मरहठों ने इस प्रतिरोध में जाटों की कोई सहायता नहीं की। बीर जाटों ने लगातार ६ घंटे तक युद्ध करके दुश्मन के छक्के छुटा दिये। दोनों ओर के मरे हुए सिपाहियों की संख्या इस से बारह हजार तक पहुँच गई। अंत में निराश हो जाटों को मैदान छोड़ना पड़ा।

जाटों के हटने पर अफगानों को मथुरा नगर के बर्दाद करने का पूरा मौका मिल गया। १ मार्च, १७५७ ई० को उन की सेना अरक्षित मथुरा नगर में घुस पड़ी। चार घंटों तक लगातार हिंदुओंकी भारकाट तथा अन्य अत्याचार होते रहे हिंदू जनता में अधिकांश पुजारी थे। नगर में जो थोड़े से मुसलमान थे उन्हें भी नहीं छोड़ा गया। मंदिरों की मूर्तियों को तोड़ने के बाद उन्हें गेंदों की तरह उछाला जाता था। धन लूटने के बाद सारे के सारे मकान नष्ट कर दिये जाते थे और फिर उनमें आग लगा दी जाती थी। ३,००० मानव प्राणियों की बलि देने के बाद जहानखाँ नजीब के सेनापतित्व में फौज को यहाँ

छोड़कर चला गया। चलते समय वह सिपाहियों से कह गया—“अब जो हिंदू मथुरा में बचे हैं उन्हें मौत के घाट उतार देने पर तुम्हें एक लाख रुपया इनाम दिया जावेगा।”

नजीब और उसकी सेना तीन दिन तक मथुरा में और ठहर कर लूट-मार करती रही। गड़ा हुआ धन तक खोद कर निकलवा लिया गया। कितनी ही ब्लियों ने अपनी इज्जत बचाने के लिए यमुना की गोद में शरण ली, कितनी ही कुओं में छूट मरी। जो बच्चों उन्हें अफगान लोग अपने साथ उड़ा ले गए और उन्हें मृत्यु से भी अधिक यातनायें भागने को बाध्य किया।*

एक प्रत्यक्षदर्शी मुसलमान ने लिखा है कि “सड़कों और बाजार में सर्वत्र हलाल किये हुए लोगों के धड़ पड़े हुए थे और सारा शहर जल रहा था। कितनी ही इमारतें धराशायी कर दी गयी थीं। यमुना नदी का पानी नर-संहार के बाद सात दिनों तक लगातार लाल रंग का रहा और इसके बाद पीले रंग का बहने लगा। नदी के किनारे पर बैरागियों और संन्यासियों की बहुत सी झोपड़ियाँ थीं। इनमें से हर झोपड़ी में साधू के कटे हुए सिर के मुँह से लगाकर रखा हुआ गाय का कटा सिर दिखाई पड़ता था।”

जहानखाँ मथुरा से चल कर बृन्दावन गया और वहाँ बैष्णवों की बड़ी संख्या में हत्याएँ कीं। उपर्युक्त प्रत्यक्षदर्शी ने अपनी डायरी में लिखा है कि “जिधर नजर जाती मुद्दों के ढेर

* जदुनाथ सरकार—फाल ऑफ दि मुगल एंपायर (प्रका० १६३४), जिल्द २, अध्याय १६ पृ० ११७—११८।

के ढेर दिखाई पड़ते थे। सड़कों से निकलना तक मुश्किल हो गया था। लाशों से ऐसी विकट दुर्गंध आती थी कि साँस लेना दूभर हो गया था।

१५ मार्च, १९५७ को अहमदशाह अब्दाली स्वयं मथुरा पहुँचा। यहाँ से जमुना पार कर उसने महावन में डेरा डाल दिया। वह गोकुल को बर्बाद करना चाहता था, पर वहाँ के साहसी नागा संन्यासियों के सामने उसकी एक न चली। ४,००० नागा लोग भूत रमा कर उसकी सेना से लड़ने को निकल पड़े। यद्यपि युद्ध में लगभग २,००० नागा मारे गये पर साथ ही उन्होंने इतने ही दुश्मनों को भी सुला दिया। अंत

अब्दाली ने अपनी फौज वापस बुलाली और गोकुल नष्ट होने से बच गया। महावन के खेमे में हैजा फैलने के कारण अब्दाली के सिपाही मरने लगे। अतः वह शीघ्र ही यहाँ से दिल्ली के लिये चल पड़ा। रास्ते में वृन्दावन को चार दिन तक पुनः लूटा--फूँका गया। मथुरा, वृन्दावन आदि स्थानों से अब्दाली को लूट में लगभग १२ करोड़ रुपये की धनराशि प्राप्त हुई, जिसे वह तीस हजार घोड़ों, खजरां और ऊंटों में लाद कर ले गया। इसके अतिरिक्त वह कितनी ही स्त्रियों को यहाँ से अक्षगानिस्तान ले गया।

मुसलमान लेखकों ने लिखा है कि अब्दाली के द्वारा विध्वंस इतने बड़े पैमाने पर किया गया कि आगरा से दिल्ली जाने वाली सड़क पर एक झोंपड़ी तक ऐसी नहीं दिखाई पड़ती थी जिसमें कोई आदमी जीवित बच गया हो। जिस रास्ते से

अब्दाली यहाँ आया और फिर यहाँ से जिस मार्ग द्वारा 'लौटा उस पर दो सेर अनाज या चारा तक नहीं मिल सकता था। *

मथुरा के इस रोमांचकारी महाविध्वंस के कुछ समय बाद सर्दार जहानखां दिल्ली से इसलिये भेजा गया कि वह जाटों के राज्य से रुपया वसूल कर लावे। इसमें उसे यथेष्ट सफलता न मिली, जिससे खिल होकर वह मथुरा नगर पर ढूट पड़ा और यहाँ एक दार फिर लूट-मार करने वाले दिल्ली लौटा।

जनवरी, १७६१ में अब्दाली की मरहठों से पानीपत के मैदान में मुठभेड़ हुई। इस बार जाटों ने मरहठों को सहायता नहीं दी। इस युद्ध मरहठों की गहरी हार हुई और उनकी शक्ति को बढ़ा धक्का पहुँचा। १७६४ ई० में सूरजमल की मृत्यु हो गई और तबसे जाटों का प्रभुत्व क्षीण पड़ने लगा। उसके लड़कों की प्रायः मरहठों और राजपूतों से नहीं बनी। धीरे-धीरे मरहठों ने अपनी ताकत बढ़ाली और १७६८ ई० में उन्होंने जाटों के अन्य कुछ इलाकों के साथ मथुरा पर भी अधिकार कर लिया।

जाटों ने अपने शासन-काल में मथुरा जिले में कई अच्छी इमारतें बनवाईं। इनमें गोवर्धन की छतरियाँ और महल, कुमुमसरोवर तथा उसके पास की छतरी एवं अन्य इमारतें उल्लेखनीय हैं।

*जदुनाथ सरकार—वही, पृ० १२०-१२४।

मरहठों का अधिकार

[१७६८-१८०३ ई०]

इस काल में मरहठों और जाटों के बीच अनवन के बहुत कम मौके आये। मरहठों, विशेषकर सिंधिया, ने जाटों के साथ मैत्री-संबंध बनाये रखने का बराबर प्रयत्न किया। मथुरा पर मरहठों का अधिकार रहा और पास के भरतपुर एवं डीग के इलाकों पर जाटों का। यद्यपि १७७४ ई० के बाद कुछ समय तक मथुरा मुगल साम्राज्य के अन्तर्गत माना जाने लगा, पर मुगल सत्ता इतनी क्षीण थी कि उसका कोई भी प्रभाव मथुरा पर न था और मरहठे ही यहाँ के वास्तविक अधिकारी थे।

सिंधिया-बंश में माधोजी सिंधिया का नाम विशेष उल्लेखनीय है। यह अपने समय का एक महान् विचारक एवं दूरदर्शी राजनीतिज्ञ था। इसे मथुरा से बड़ा प्रेम था और यहाँ वह बहुत समय तक रहा। नगर के उत्तर की ओर उसके बनवाये हुए घाट अब भी मौजूद हैं। नगर का प्रबंध उसने हिम्मतबहादुर नामक एक चतुर व्यक्ति को सौंपा।

कहा जाता है कि माधोजी ने कृष्ण-जन्म-स्थान में औरंगजेब की मस्जिद के पीछे चबूतरे पर केशव का एक विशाल मन्दिर बनवाना चाहा। मथुरा के पण्डितों ने उसे इस कार्य के लिये अपनी स्वीकृति देदी, पर काशी के पण्डितों ने मस्जिद के समीप ही मन्दिर का बनवाना निषिद्ध बताया और

इसके लिये अपनी सहमति नहीं दी। फलस्वरूप सिंधिया का यह विचार कार्य रूप में परिणत न किया जा सका।

ब्रिटिश शासन-काल

[१८०३--१८४७ ई०]

अठारहवीं शतां के अन्त तक भारत में अंग्रेजों के पैर काफी जम चुके थे। वे यहाँ की देशी एवं विदेशी शक्तियों में प्रमुख बन चुके थे और इस देश पर अपना अधिकार दरादर बढ़ाते जा रहे थे। १८०३ ई० में अंग्रेजों ने दौलतराव सिंधिया को परास्त किया और मथुरा पर अधिकार कर लिया*। मथुरा नगर को अङ्गरेजों ने अपना फौजी अड्डा बनाया। अगले वर्ष होल्कर की सेना ने कुछ दिन के लिये इस नगर पर कब्जा कर लिया। पर शीघ्र ही जनरल लेक ने उसे पराजित कर यहाँ अपना स्थायी अधिकार कर लिया।

डीग और भरतपुर के युद्धों में अङ्गरेजों की विजय के फलस्वरूप उनकी धाक जाट प्रदेश पर भी जम गई। जाटों ने १८०५ ई० में अङ्गरेजों की अधीनता स्वीकार करली। अब आगरा-मथुरा प्रदेश पर ईस्ट इन्डिया कम्पनी का पूरा अधिकार हो गया। १८३२ ई० तक मथुरा प्रदेश का कुछ भाग आगरा ज़िले के और कुछ सादाबाद ज़िले के अन्तर्गत रहा।

* अंग्रेजों के मथुरा पर अधिकार करने के साल ही यहाँ एक भयंकर भूचाल आया, जिससे यहाँ की कितनी ही इमारतों का क्षति पहुँची। (देखिए ग्राउंज—मेम्ब्रायर पृ० १४२)

गया। परन्तु १८३२ ई० में पृथक रूप में मथुरा ज़िले का निर्माण कर दिया गया। इस नये ज़िले का केंद्र मथुरा नगर रखा गया। ज़िले का आठ तहसीलों में बँटा गया—अडींग, सहार, कोसी, माँट, नौहझील, महावन, सादावाद और ज़लेसर। १८६० ई० में नौहझील को माँट तहसील में मिला दिया गया और १८६८ ई० में अडींग की तहसील टूट कर मथुरा में आ गई। १८७४ ई० में ज़लेसर की तहसील मथुरा ज़िले से अलग करदी गई। फिर अन्य कई छोटे परिवर्तनों के बाद अन्त में इस ज़िले में चार तहसीलें रह गईं—मथुरा, छाता, माँट और सादावाद।

ईस्ट इन्डिया कम्पनी के शासन-काल में १८५७ ई० तक मथुरा में कोई उल्लेखनीय घटना नहीं हुई। इस नगर के प्रति भी अङ्गरेजों की वही नीति रही होगी जो उनके द्वारा शासित अन्य भारतीय प्रदेशों पर थी। १८५७ में स्वतन्त्रता संग्राम में मथुरा के निवासियों ने भी भाग लिया। उस समय यहाँ का कलक्टर थार्नाहिल था। लोगों ने सरकारी कोष और न्यायालय पर अधिकार करने के बाद जेज पर भी कब्जा कर लिया। फिर वे दिल्ली सड़क की ओर बढ़े। जिन अङ्गरेजों ने उनका मुकाबला किया वे मारे गये। थार्नाहिल छाता चला गया था। वहाँ से बड़ी कठिनाई के साथ मथुरा लौटा और राया होकर आगरा पहुँचा। लोगों में बड़ा जोश था परनगर के कई धनिकों ने अङ्गरेजों की पूरी सहायता की, जिससे अन्त में अङ्गरेज 'मथुरा के विद्रोह' को दबाने में सफल हुए। उन्होंने स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लेने वालों को कठोर दण्ड दिया। अङ्गरेजों को सहायता पहुँचाने वाले धनिकों को इनाम में अनेक जागीरें प्रदान की गईं।

१८५८ से १८४७ ई० तक मथुरा ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत रहा। इस काल में नगर में अनेक सुधार हुए। जी० आई० पी० तथा बी० बी० सी० आई० रेलवे के स्टेशन यहाँ बने तथा नगर के बीच में अनेक सड़कों का निर्माण किया गया। यहाँ से जिले में तथा जिले के बाहर स्थित महत्वपूर्ण स्थानों तक सड़कें बनवाई गईं। इसके अतिरिक्त नगर में डाक, तार, विजली, पानी आदि की सुविधाएँ भी प्रदान की गईं।

ब्रिटिश शासन-काल में सौभाग्य से यह नगर किसी प्रकार के विध्वंस का शिकार नहीं हुआ। अब नगर का विस्तार काफी बढ़ गया। छावनी, सदर बाजार, कचहरी और चारों स्टेशनों का बनना ही इस विस्तार का मुख्य कारण हुआ। जो नई इमारतें ब्रिटिश काल में बनी उनमें कलकटरी कचहरी (१८६१ ई०), अस्पताल (१८६५), , हाई स्कूल (१८७०), हार्डिङ्ग गेट या होली दरवाज़ा (१८७०), कैथोलिक चर्च तथा पुराना म्यूज़ियम (१८७४) उल्लेखनीय हैं। बाहर के तथा नगर के धनिकों ने भी इस काल में अनेक विशाल मन्दिर, बड़ी धर्मशालाएँ, मकान आदि बनवाये। इनकी चर्चा अन्तिम अध्याय में की जायगी।

ब्रिटिश काल में मथुरा के अधिकारियों में श्री एफ० एस० ग्राउज़ का नाम विशेष उल्लेखनीय है। वे यहाँ १८७२ से १८७७ तक कलेक्टर रहे। इसके पहले श्री हार्डिंग के समय में वे यहाँ ज्वायंट मैजिस्ट्रेट थे। कुछ ही वर्षों की अवधि में ग्राउज़ ने जो कार्य किये उनके कारण उनका नाम मथुरा के

इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगा। उन्होंने वृन्दावन के प्रसिद्ध गोविंददेव के मंदिर की, जिसकी दशा बहुत खराब होगई थी, मरम्मत करवा कर उसे वह रूप दिया जो आज दिखाई पड़ता है। मरम्मतका काम चार वर्ष से ऊपर में समाप्त हुआ और उसमें ३८,३६५) रु० व्यय हुए। इस मन्दिर के अतिरिक्त श्री ग्राउज़ ने वृन्दावन के जुगलकिशोर, गोपीनाथ आदि अन्य कई प्राचीन मंदिरों की भी मरम्मत करवाई। उन्होंने मथुरा में चौक वाली मस्जिद की भी हालत ठीक कराई। सदर में कैथोलिक चर्च की विशाल इमारत बनवाने का श्रेय भी श्री ग्राउज़ को है।

मथुरा के प्राचीन अवशेषों को नष्ट होता हुआ देख श्री ग्राउज़ ने यहाँ एक पुरातत्त्व संग्रहालय खोलने का विचार किया, जिसमें सभी प्राचीन सामग्री रखी जा सके। सन् १८७४ ई० में इनके प्रयत्नों से कचहरी के पास बनी हुई एक कलापूर्ण इमारत में संग्रहालय की स्थापना की गई और उसमें मथुरा कला एवं पुरातत्त्व की सभी उपलब्ध सामग्री संगृहीत की गई। यह संग्रहालय कुछ दिन बाद बहुत बढ़ गया और सन् १९२६ ई० में उसकी विशाल सामग्री को डैम्पियर पार्क में बनी हुई एक बड़ी इमारत में लाकर प्रदर्शित किया गया।

श्री ग्राउज़ का अंतिम महत्त्वपूर्ण कार्य मथुरा के संबंध में अन्वेषण एवं प्रकाशन था। इस विद्वान् लेखक ने मथुरा के इतिहास, कला, धर्म आदि के संबंध में कई अनुसंधानपूर्ण लेख लिखे जो देश और विदेश की खोज-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए। परन्तु इन सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य यह था

कि श्री ग्राउंज़ ने मथुरा पर एक वृहत् एवं अध्ययनपूर्ण ग्रंथ 'मथुरा--ए डिस्ट्रिक्ट मेम्बायर' * नाम का लिखा, जिसमें मथुरा ज़िले के भौगोलिक, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक पहलुओं से सम्बन्धित अनेक विषयों का सुन्दर विवेचन किया गया है।

१५ अगस्त, सन् १९४७ का दिन भारत के इतिहास में एक महान् दिवस था। इसी दिन यह देश एक दीर्घ काल से चली आई हुई पराधीनता से मुक्त हुआ।

अन्य स्थानों के समान मथुरा नगर में भी यह दिवस बड़े उत्साह एवं आनन्द से मनाया गया। मथुरा की जनता में इस दिन इतना अधिक हर्ष और आह्लाद था जितना शायद साढ़े तीन हजार साल पहले कंस के उत्पीड़न से छुटकारा पाने के समय में भी न रहा होगा। इस स्वतन्त्रता-दिवस के बाद का मथुरा का इतिहास प्रायः सभी क्षेत्रों में उन्नति का द्योतक है।

* इस ग्रंथ का प्रथम संस्करण १८७४ में, दूसरा १८८० में और तीसरा १८८३ ई० में प्रकाशित हुआ।



मथुरा में कलाओं का विकास

मथुरा नगर को न केवल प्रमुख वैष्णव तीर्थ होने तथा विभिन्न धर्मों का आश्रय-स्थल बनने का गौरव प्राप्त हुआ, अपितु वह विविध ललित कलाओं के विकास का भी केन्द्र बना। वास्तुकला तथा मूर्तिकला के लिये तो यह नगर बहुत प्रसिद्ध हुआ। ईस्वी सन् के कई शती पहले से लेकर लगभग बारहवीं शती के अन्त तक मथुरा नगर में न जाने कितने स्तूप, विहार, मंदिर तथा मकान बने होंगे, परन्तु कालचक्र तथा विशेषकर दुर्दीन आक्रमणकारियों के निष्ठुर हाथों ने इन इमारतों का एक भी समूचा नमूना आज देखने को नहीं छोड़ा। केवल उन कृतियों के भग्नावशेष अनेक प्रकार के खंभों, धन्त्रियों, चौखटों, गवाहों आदि के रूप में मथुरा नगर तथा उसके आस-पास से मिले हैं। विविध धर्मों तथा लोक-जीवन से सम्बन्धित मूर्तियाँ तो बहुत बड़ी संख्या में प्राप्त हुई हैं, जिनमें मूर्ति-कला के अध्ययन की अपार सामग्री है। इन सब अवशेषों को देखने से पता चलता है कि मथुरा के शिल्पी और कलाकार प्रकृति-चित्रण के साथ दैवी तथा मानव-भावों के अंकन में कितने सिद्धहस्त थे !

मथुरा में स्थापत्य तथा मूर्ति-कला के विकास का सबसे

महत्त्वपूर्ण युग कुपाण काल के प्रारम्भ से लेकर गुप्त काल के अंत तक रहा। यद्यपि इसके बाद भी ये कलायें लगभग बारहवीं शती के अंत तक जारी रहीं, पर इनमें पहले-जैसी सजीवता नहीं मिलती। बारहवीं शती के बाद लगभग साढ़े तीन सौ वर्षों तक मथुरा कला का प्रबाह अवरुद्ध हो जाता है। पर सोलहवीं शती से हमें कला का पुनरुत्थान साहित्य, संगीत तथा चित्रकला के रूप में दिखाई पड़ने लगता है। यहाँ हम विभिन्न मुख्य कलाओं की संचेप में चर्चा करेंगे—

१. स्थापत्य

जैसा ऊपर कह चुके हैं, मथुरा की पुरानी इमारतों का एक भी समूचा नमूना आज प्राप्त नहीं है। साहित्यिक तथा पुरातत्त्व संबंधी प्रमाणों से पता चलता है कि प्राचीन मथुरा में धार्मिक स्तूपों, मठों, मंदिरों आदि के अलावा बड़ी संख्या में प्रासाद या विशाल मकान थे। ये प्रासाद प्रायः कई तलों के होते थे। ऊपर के तलों पर जाने के लिए सोपानमार्ग (जीने) होते थे। जीने के 'किनारों' पर कलापूर्ण खंभे लगे रहते थे। मकान में बैठक के लिये तथा स्नान, भोजन, शयन आदि के लिये अलग-अलग कमरे होते थे। मकान के ऊपर का मंजिलों में यथास्थान गोखे (गवाह) होते थे, जिनसे भाँक कर स्त्री-पुरुष नीचे होने वाले उत्सव आदि देखते थे। मथुरा से इस प्रकार के कई प्राचीन गवाह प्राप्त हुए हैं। कुछ मकानों के कर्श भी बहुत सुन्दर होते थे। रंगीन पत्थर के नक्काशीदार कर्श मथुरा नगर से कुछ दूर बाजना नामक गाँव से प्राप्त हुए हैं। मंदिरों और मकानों में जो खंभे, देहली, बाजू, धन्नी,

बँडेर, शिखर आदि लगाये जाते थे उन पर कमल, मङ्गलघट, कीर्तिमुख आदि चिन्ह उकेरे रहते थे। इनके अतिरिक्त उन पर देवी-देवताओं, यज्ञ-यज्ञियों, गन्धवीं, किन्नरों एवं अनेक भांति के लता-बृक्षों तथा पशु-पक्षियों के कलात्मक चित्र भी उत्कीर्ण रहते थे। विविध भांति की कामदार ईंटों का भी प्रयोग किया जाता था, जिनमें उपर्युक्त अनेक अलंकरण रहते थे। ऐसी ईंटें बड़ी संख्या में मथुरा नगर और उसके आस-पास से प्राप्त हुई हैं।

बौद्धों एवं जैनियों के स्तूपों तथा विहारों में वास्तु कला संबंधी जो अवशेष मिले हैं उन्हें देखने से पता चलता है कि इन इमारतों की रचना बड़ी ही कलापूर्ण होती थी। इनके चारों ओर जो वेदिका बनाई जाती थी वह अत्यन्त आकर्षक होती थी। मथुरा के प्राचीन स्तूपों तथा विहारों की रचना-शैली प्रायः वैसी ही थी जैसी की साँची, तक्षशिला, सारनाथ, अमरावती आदि स्थानों में मिली है।

मुराल काल में अकबर के समय कलाओं का जो पुनरुद्धार हुआ उसमें वास्तुविद्या या स्थापत्य को भी स्थान मिला। मथुरा में इस काल मे जो इमारतें बनी उनमें अंबेर (जयपुर) के राजा मानसिंह का बनवाया हुआ किला *

* इसे कुछ लोग 'कंस का किला' समझते हैं, जो ठीक नहीं है। कंस का किला उस चौकोर-से ऊँचे टीले के स्थान में रहा प्रतीत होता है जो वर्तमान कटरा केशवदेव में और झज्जेव की मस्जिद के पास उत्तर की तरफ है।

तथा ओड़छा के राजा वीरसिंह देव के द्वारा बनवाया हुआ केशवदेव का मंदिर मुख्य थे। किले की विशाल इमारत का अब कुछ ही अंश बचा है। केशवदेव मंदिर का निर्माण १६१६ ई० में पूरा हुआ। दुर्भाग्य से नष्ट करते समय इस इमारत का कोई भाग नहीं छोड़ा गया, न इसका नक्शा कहीं उपलब्ध है, जिससे इसके वास्तविक मूर्त्यों का पता लगाना कठिन हो गया है। ट्रैवनिंयर आदि यात्रियों के बर्णनों से प्रकट है कि यह मंदिर बहुत विशाल था और विविध प्रकार की मूर्तियों से इसका बाहरी भाग अलंकृत था। दहुत सम्भव है कि इस मंदिर की रचना-शैली वैसी ही थी जैसी कि वृद्धावन के गोविंददेव मंदिर की है। अन्तर केवल इतना प्रतीत होता है कि केशवदेव बाला मंदिर अधिक विशाल एवम् भव्य था तथा उसका वहिभाग गोविंददेव के मंदिर की तरह सादा न होकर विविध प्रकार के मूर्ति-खचित पत्थरों से अलंकृत था। मुगल काल की अन्य इमारतें, जो अब भी मौजूद हैं, सती बुर्ज (निर्माण १५७० ई०) तथा 'चौबे जी का बुर्ज' हैं। ये दोनों लाल पत्थर की बनी हैं।

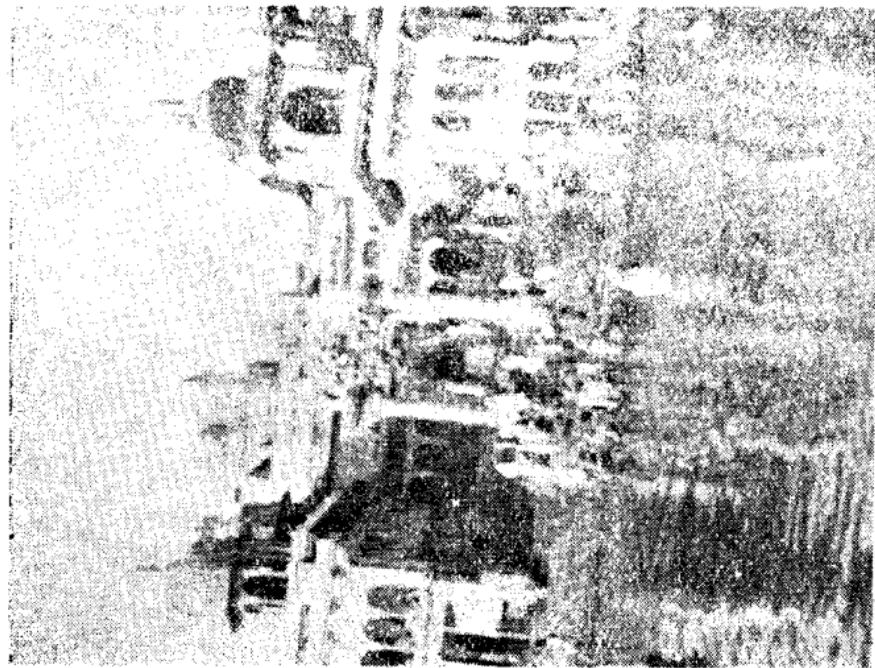
१६५८ ई० के बाद लगभग पूरी एक शताब्दी तक मथुरा नगर विभिन्न राजनैतिक दुर्घटनाओं का शिकार रहा और इस काल में अनेक बार इसका विधांस हुआ। इस अवधि में अब्दुल-नबी तथा औरंगजेब की मस्जिदों को छोड़कर यहाँ अन्य किसी उल्लेखनीय इमारत का निर्माण नहीं हुआ।

अठारहवीं शती के उत्तरार्ध तथा उन्नीसवीं शती में मथुरा में प्रायः शांति बनी रही और १८५७ के स्वतन्त्रता संग्राम के अतिरिक्त यहाँ अन्य कोई बड़ी राजनैतिक हलचल

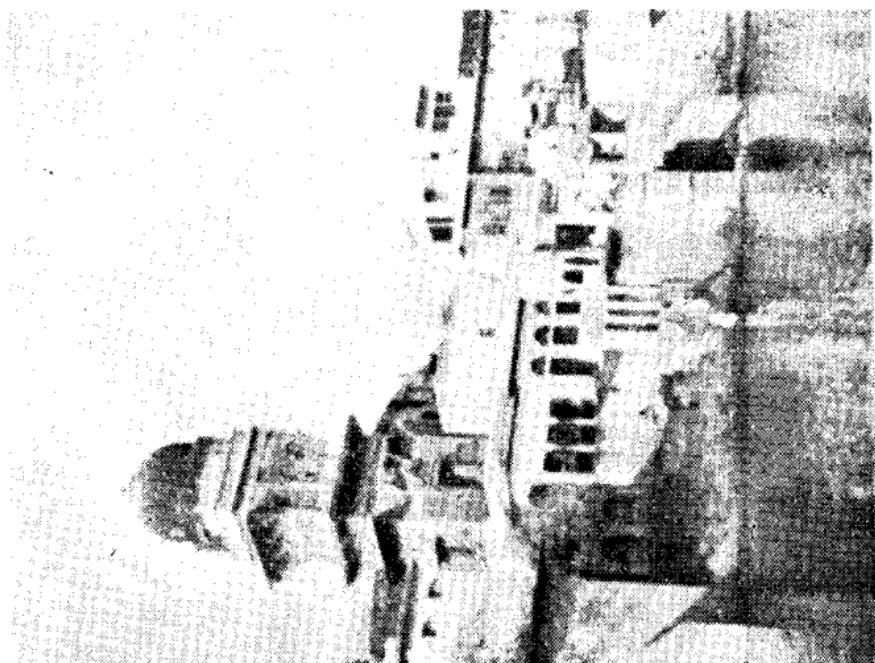
नहीं हुई। लगभग डेढ़ सौ वर्षों के इसकाल में मथुरा में अनेक मंदिरों एवं अन्य इमारतों का निर्माण हुआ। इनमें से दो-एक को छोड़कर शेष सभी इमारतें भारतीय ढंग की हैं और मुख्यतया जाट शैली^१ को व्यक्त करती हैं। इनमें मुगल स्थापत्य के भी कई तत्त्वों को समाविष्ट कर लिया गया है। इन इमारतों में पत्थर की गढ़ाई और विशेषकर जाली का काम बड़ा ही बारीक एवं कलापूर्ण मिलता है। सामने की ओर जो मेहराब, गौख और छज्जे बनते हैं वे भी बड़ी मेहनत से तैयार किये जाते हैं। इस कला की कुछ उल्लेखनीय इमारतें ये हैं—द्वारकाधीश, श्रीनाथ जी, गोवर्धन नाथ जी, बलदेव जी, राधा कृष्ण और विजय गोविंद जी के मंदिर ;^२ नरायन दास धर्मशाला (वृन्दावन दर्वाज़ा), यमुना बाग की छतरियाँ, संग्रहालय की पुरानी इमारत (तहसील के पास), शिवताल, भरतपुर के राजा की तथा सेठ लक्ष्मीचंद जी की हवेलियाँ, 'हाथी घोड़ा वाला' मकान, लस्का कुटी (बंगाली घाट) और होली दर्वाज़ा।

^१ यह बात ध्यान देने की है कि मथुरा में प्राचीन हिंदू शैली के मंदिरों का निर्माण, जिनमें ऊँचे शिखर की प्रधानता रहती है तथा जिनका बाहरी भाग विविध मूर्तियों तथा अन्य अलंकरणों से सुसज्जित रहता है, सत्रहवीं शती में केशवदेव के विशाल मंदिर के रोमांचकारी विघ्नांस के बाद समाप्त-सा हो गया। १८ वीं शती से मंदिरों के निर्माताओं ने यहाँ जान-बूझकर कम ऊँचे और प्रायः मकाननुमा मंदिर शहर के भीतर ही बनवाये। वे इस बात को न भूले होंगे कि सबसे पहले उच्च शिखर वाले विशाल मंदिर ही बाहर से आने वाले बर्बरों की वक्र हृष्टि का शिकार बनते रहे हैं।

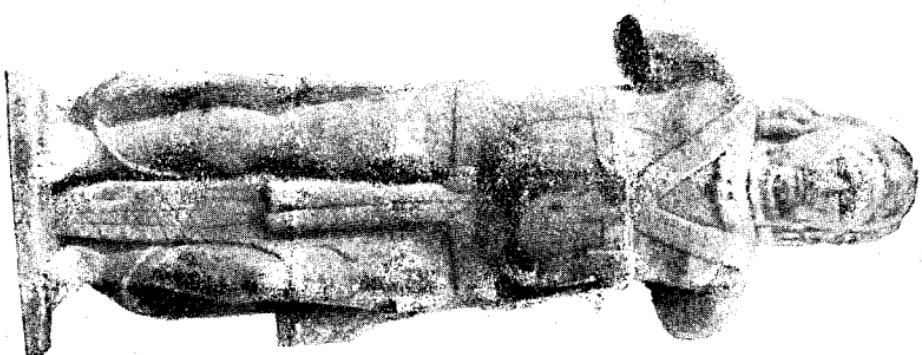
चिश्रांत थाट



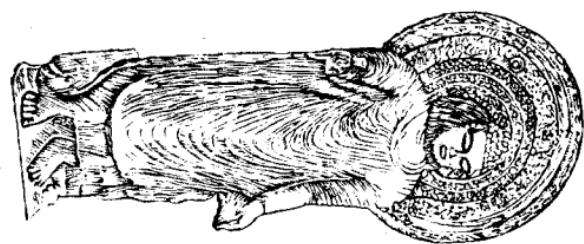
सती तुर्जे (१६ चौं शती)



गोरक्षान यज्ञ



गुजरात का लीन सुंदर बुद्ध मूर्ति



तोद चाले कुचेरा (कुपाण काल)



१६ वीं शताब्दी के अंतिम भाग में सदर में एक विशाल कैथोलिक चर्च का निर्माण हुआ, जो युरोप के गाँथिक स्थापत्य के नवीन ढंग का एक अच्छा उदाहरण है।

२ मूर्तिकला

अब तक मथुरा में मूर्तिकला की सबसे प्राचीन कृतियाँ ई० पू० चौथीशती की मिली हैं। इस कला का प्रारम्भ यहाँ इस समयसे अवश्य पहले हुआ होगा। ई० पू० चौथी शती से लेकर बारह-वीं शती तक के समय के कई हजार मूर्तियाँ मथुरा से प्राप्त हो चुकी हैं, जिनसे पता चलता है कि यह स्थान जैन, बौद्ध तथा हिंदू—इन तीनों प्रधान धर्मों का केन्द्र था। मथुरा के कलाविदों ने प्रत्येक धर्म से संबंधित मूर्तियों की कलापूर्ण रचना कर अध्यात्म के साथ सौंदर्य का मनोहर सामंजस्य उपस्थित किया। मूर्ति के रूप में भगवान् बुद्ध का पूजन मथुरा से ही प्रारम्भ हुआ प्रतीत होता है। हिंदू धर्म के अनेक देवताओं की मूर्तिय सबसे पहले मथुरा के कलाकारों ने ही गढ़ीं। इसी प्रकार जैनियों के आयोगपट्टों (पूजा के शिलापट्ट) तथा अनेक तीर्थकरों की प्रतिमाओं का भी निर्माण यहाँ से शुरू हुआ।

मथुरा में अधिकतर रवेदार लाल पत्थर की मूर्तियाँ मिली हैं, जो यहाँ से कुछ दूर पर फतहपुर सीकरी, रूपबास आदि स्थानों में बहुलता से मिलता है और मूर्ति गढ़ने में मुलायम होता है। मिट्टी की भी प्राचीन मूर्तियाँ और खिलौने आदि बड़ी संख्या में मथुरा से प्राप्त हुए हैं।

जैन मूर्तियाँ—मथुरा में जैनियों का सबसे दड़ा केन्द्र आधुनिक कंकाली टीला और उसके आस-पास था। यहाँ १८८८ से १८९१ ई० तक आंशिक खुदाई हुई, जिसके फलस्वरूप लगभग एक हजार मूर्तियाँ प्राप्त हुईं। ये सभी लखनऊ संग्रहालय को भेज दी गईं। इनमें अनेक तीर्थकर प्रतिमाओं के अतिरिक्त कई सुन्दर आयागपट्ट, वेदिका-स्तंभ, सूची, तोरण आदि थे। कंकाली टीले के अलावा मथुरा के अन्य स्थानों से भी जैन अवशेष काफी संख्या में प्राप्त हुए हैं। मूर्तियों पर अलंकरण के सुन्दर उपकरण—यक्ष-यक्षी, मीन, मकर, गज, सिंह, मङ्गल घट, कीर्तिमुख, स्वस्तिक, कमल, अशोक चंपक आदि-मिलते हैं। अधिकांश जैन मूर्तियाँ वे हैं जो कुटुम्बिनी शियों के द्वारा बनवाई गयी थीं। लखनऊ और मथुरा के संग्रहालयों में कई दर्जन ऐसी जैन कला कृतियाँ संगृहीत हैं जो कला की हृष्टि से एवं प्राचीन संस्कृति की व्याख्या करने की हृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

बौद्ध मूर्तियाँ—मथुरा के कुषाण शासक, जिनमें से अधिकांश ने बौद्ध धर्म को प्रोत्साहित किया, मूर्ति-निर्माण के बड़े पक्षपाती थे। यद्यपि कुषाणों के पूर्व भी मथुरा में बौद्ध धर्म एवं अन्य धर्मों से संबंधित प्रतिमाओं का निर्माण किया गया था पर वह सीमित रूप में हुआ था। यहाँ मूर्ति-कला का जैसा बहुमुखी विकास कुषाण काल में वैसा हुआ कभी नहीं हुआ। इस काल की हजारों मूर्तियाँ अब तक प्राप्त हो चुकी हैं और होती जा रही हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि कुषाणकाल में मथुरा नगर उत्तर भारत का सबसे बड़ा मूर्ति-

निर्माण का केन्द्र हो गया था और विविध धर्मों से संबंधित मूर्तियों का अक्षय भंडार बन गया था।

कुषाण काल के पहले बुद्ध की मूर्ति नहीं मिलती। उनका पूजन विविध चिन्हों के रूप में होता था। परन्तु कुषाण काल के प्रारम्भ से महायान भक्ति-पंथ की उन्नति के साथ लोगों में बुद्ध को मूर्ति रूप में देखने की लालसा तीव्र हो उठी। फलस्वरूप मथुरा के कलाकारों ने बुद्ध की मानुषी प्रतिमा का सृजन किया। धीरे-धीरे उनकी सैकड़ों मूर्तियाँ गढ़ी जाने लगीं। बुद्ध के पूर्व जन्म की जानक कथायें भी पत्थरों पर उत्कीर्ण होने लगीं। मथुरा से बौद्ध धर्म संबंधी जो अवशेष मिले हैं उनमें प्राचीन धार्मिक एवं लौकिक जीवन के अध्ययन की अपार सामग्री है। मथुरा-कला के विकास के साथ बुद्ध तथा बोधिसत्त्व की मूर्तियाँ अधिक सुन्दर बनने लगीं। गुप्त कालीन बुद्ध प्रतिमाओं में अंग-प्रत्यंग के कलापूर्ण विन्यास के साथ एक दिव्य सौंदर्य एवं आध्यात्मिक गांभीर्य का समन्वय मिलता है। मथुरा के संग्रहालय में ऐसी एक बड़ी ही मनोहर मूर्ति (सं. ए ५) प्रदर्शित है।

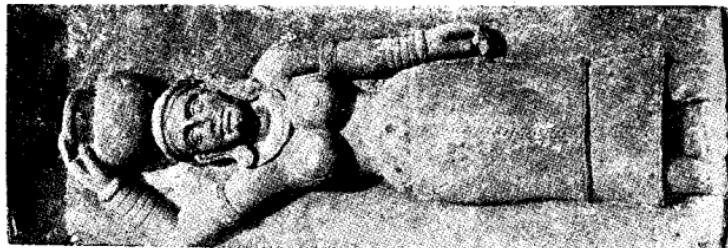
हिंदू मूर्तियाँ—हिंदू मूर्तिकला के उद्भव एवं विकास की दृष्टि से मथुरा का स्थान बड़े महत्त्व का है। यहाँ सर्वप्रथम अनेक पाराणिक देवी-देवताओं की मूर्तियाँ बनाई गईं। ब्रह्मा, शिव और विष्णु की प्राचीन मूर्तियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं। ब्रह्मा की एक मूर्ति पर उनके तीन मुख एक सीध में दिखाये गये हैं और चौथा बीच वाले सिर के ठीक पीछे ऊपर को उठा हुआ है। विष्णु की कुषाणकालीन कई

मूर्तियाँ अपने ढंग की अनोखी हैं। उनकी सबसे सुन्दर मूर्ति मथुरा संग्रहालय की ई६ संख्यक है, जिसकी ध्यानमुद्रा और आभूषणों एवं वस्त्रों का सुन्दर प्रदर्शन बड़े ही भाव-पूर्ण ढंग से अंकित किया गया है। शिख की अकेली तथा पार्वती के सहित कई मूर्तियाँ मिली हैं। उनकी गुप्तकालीन अर्धनारीश्वर की प्रतिमायें विशेष सुन्दर हैं।

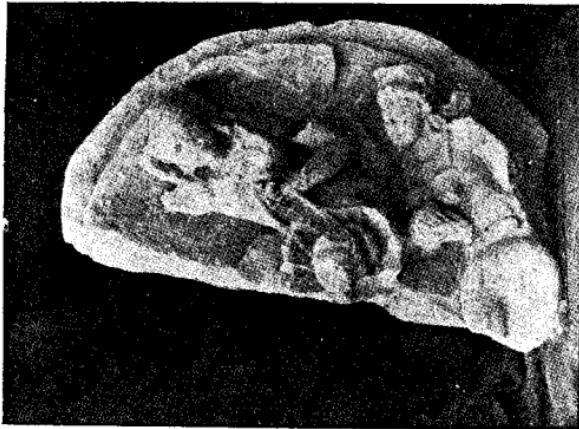
कृष्ण-बलराम की भी मूर्तियाँ मिली हैं। दुर्भाग्य से कृष्ण की प्राचीन उपलब्ध मूर्तियों की संख्या बहुत कम है। एक शिलापट पर वह दृश्य दिखाया गया है जबकि वसु-देव नवजात कृष्ण को लेकर यमुना पार कर रहे हैं। हाल में मानसिंह के किले से श्रीकृष्ण की एक गुप्तकालीन मूर्ति मिली है जिसमें वे कालिय नाग का दमन करते हुए दिखाये गये हैं। बलराम की मूर्तियाँ अपेक्षाकृत अधिक प्राप्त हुई हैं। उनकी सबसे प्राचीन मूर्ति शुंग काल की है, जिसमें वे हल-मूसल धारण किए हुए हैं।

इनके अतिरिक्त स्वामिकार्तिक, गणेश, इन्द्र, कुबेर, अग्नि, नवग्रह, सूर्य कामदेव आदि देवों तथा लक्ष्मी, सरस्वती सप्तमातृका, सिंहवाहिनी दुर्गा, गंगा, यमुना आदि देवियों की अनेक मूर्तियाँ मथुरा से प्राप्त हुई हैं।

अन्य प्रतिमाएँ—मथुरा कला में यज्ञ-यज्ञियों, किन्नरों, सुपर्णों तथा नागों की मूर्तियाँ काफी संख्या में प्राप्त हुई हैं। इनके अतिरिक्त शक-कुषाण शासकों की कई बहुमूल्य प्रतिमाएँ मिल चुकी हैं। इनमें से विम कैडफाइसिस, कनिष्ठक तथा चष्टन की प्रतिमाएँ मथुरा के संग्रहालय में प्रदर्शित हैं।



मिरपर दही का भांड लिए
गोपी (कुषाण काल)



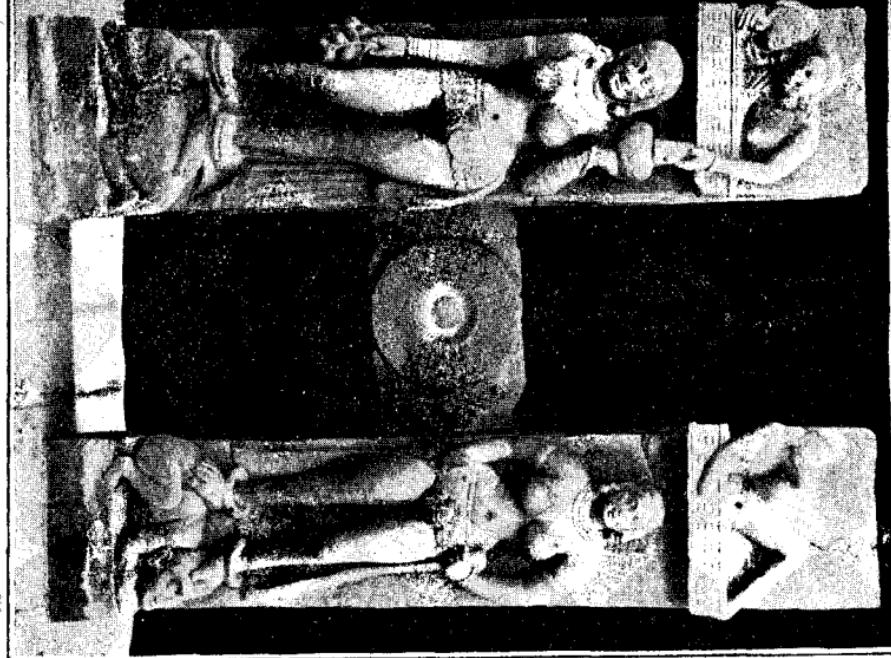
कालिय नाग का दमन करते हुए कृष्ण
(गुप्त काल)



हल-मसला धारा
वलराम (शुंग काल)

पूर का गुच्छा और
गान्धी लिंग मंजरी

वैदिका-मन्त्र पर
मनान के बाट चला



कुपाणकालीन - द्वी । (सामने और
पीछे का चित्र)



ऐसी कृतियों की संख्या बहुत बड़ी है जो धर्मविशेष से संबंधित न होकर मुख्यतया लौकिक जीवन की प्रतीक हैं। मथुरा के वेदिका स्तंभों पर ऐसी बहुतसी मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं जिनमें तत्कालीन आनन्दमय लोक-जीवन की सुन्दर भाँकी मिलती हैं। इन मूर्तियोंमें विविध आकर्षक मुद्राओंमें खड़ीस्त्रियों के चित्रण अधिक हैं। किसी खम्भे पर एक बनिता उद्यान में फूल चुनती हुई दिखाई गई है तो किसी पर कंदुक-क्रीडा में व्यस्त युवती प्रदर्शित है। कोई सुन्दरी भरने के नीचे स्नान का आनन्द ले रही है तो दूसरी स्नान करने के उपरांत कपड़े पहन रही है या अपने गीले केश सुखा रही है। किसी स्तंभ पर बालों के संवारने का दृश्य है तो किसी पर कपोलों पर लोध्रचूर्ण मलने का या पैरों पर अलता लगाने का। कहीं कोई रमणी पुष्पित वृक्ष की छाया में बैठ कर बीणा या बाँसुरी बजाने में तम्हीन है तो दूसरी नृत्य में। वास्तव में मथुरा के ये वेदिका स्तंभ कलात्मक शृङ्गार और माधुर्य के जीते-जागते रूप हैं जिन पर यहाँ के कलाकारों ने सुहचिपूर्ण ढंग से प्रकृति और मानव-जगत् की सौंदर्य-राशि उपस्थित करदी है।

मथुरा कला का स्वर्णयुग—ईस्वी सन् के प्रारम्भ से लेकर पाँचवीं शती के अन्त तक का युग मथुरा की मूर्तिकला का ‘स्वर्णयुग’ कहा जा सकता है। इस में भी इस युग का प्रथमार्द्ध विशेष महत्त्व का है। इस काल के कुषाण शासकों को कला के सौंदर्य-पक्ष ने अधिक आकृष्ट किया। मथुरा के कलाकारों ने अपने संरक्षकों की इस भावना का स्वागत किया और उसकी पूर्ति के लिये कला के शृङ्गार-पक्ष को उन्नत

किया। कुषाणकाल के जो तोरण, वेदिकास्तम्भ, सूची, आयागपट्ट आदि तथा मिट्टी की जो बहुसंख्यक मूर्तियाँ मिली हैं उन पर इसके जीते-जागते प्रमाण मिलते हैं। कलाकारों ने प्रकृति तथा मानव-जीवन—इन दोनों से कला के अलंकृतरण की सामग्री को जिस खूबी से छाँटकर अपनी कृतियों पर उसका उपयोग किया है वह सचमुच सराहनीय है। कला के दिव्य आदर्शों से प्रेरित होकर उन्होंने सृष्टि की अपार रूप-सामग्री से अपनी रचनाएँ विभूषित कर उन्हें शाश्वत रूप प्रदान किया है। उत्कृष्ण कमल आदि पुष्पों से सुशोभित जलाशय; नदी; पर्वत; भरने; अशोक, कदम्ब, नागकेशर, चम्पक आदि पुष्पित वृक्ष; अनेक भाँति की लता-बेलें; एवं प्रकृति में सानन्द विचरण करने वाले पशु-पक्षी—ये सभी कलाकारों के द्वारा आवश्यकतानुसार ग्रहण किये गये हैं। इन प्राकृतिक उपकरणों के साथ मानवी रूपका सामंजस्य करना भारतीय शिल्पियों और विशेष कर मथुरा के कलाविदों की एक अनोखी देन है।

जिस प्रकार भारतीय साहित्य में संसार को पूर्ण रूप से समझने तथा जीवन का वास्तविक आनन्द प्राप्त करने के लिये प्रकृति को एक अनिवार्य अंग माना गया है उसी भाँति भारतीय कलाविदों ने भी अपने क्षेत्र में इस तत्व को प्रकट किया है। मथुरा की कला में वेदिका-स्तम्भों आदि पर हमें इसका जीता-जागता चित्रण मिलता है--कहीं वनों में स्त्री-पुरुषों द्वारा पुष्प-संचय किया जा रहा है, कहीं निर्भरों और जलाशयों में स्नान तथा क्रीड़ा के दृश्य हैं। कहीं सुन्दरियों के द्वारा

मञ्चरी, पुष्प या फल दिखाकर शुकादि पक्षियों को लुभाने का, कहीं खियोंके केशों में गुथे हुए मुक्ताजालों अथवा उनकी दन्त पंक्तियों के लोभी हँसों का और कहीं अशोक, चम्पक, बकुल, कदम्ब आदि वृक्षों की डाली थामे सन्नतांगी रमणियों के ललित अंगविन्यासों का चित्रण है।

सौंदर्य के अनिवार्य साधन के रूप में नारी का चित्रण मथुरा-कला में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यहाँ के कलाविदों ने शृङ्गार के स्वस्थ रूप का प्रदर्शन आवश्यक माना, जिसके द्वारा न केवल लोक-रञ्जन की सिद्धि हो पर साथ ही समाज और धर्म को निष्क्रिय एवं निर्जीव होने से बचाया जा सके। मूर्ति-कला में नारी के श्री-रूप की अभिव्यक्ति करे उन्होंने अपने इस स्पृहणीय उद्देश्य को चरितार्थ किया।

३. चित्रकला

चित्रकला के क्षेत्र में मथुरा की कोई निजी प्राचीन शैली नहीं मिलती। यहाँ के चित्र राजस्थानी या राजपूत शैली के ही अन्तर्गत हैं। मथुरा में कुछ काराज पर और कुछ कपड़ों पर बने हुए (चित्रपट) पुराने चित्र मिले हैं। पोतराकुण्ड, शिवताल आदि स्थानों में कुछ भित्तिचित्र भी प्राप्त हुए हैं, पर ने अधिक पुराने नहीं हैं। मथुरा में आधुनिक काल में बने हुए नवीन ढंग के मन्दिरों में अधिकतर जयपुर की कारीगरी मिलती है।

भगवान् कृष्ण की बज में विविध लीलाएँ तथा यहाँ के मनोहर प्राकृतिक स्थान ईस्ती सोलहवीं शती के प्रारम्भ से ही

चित्रकारों के प्रधान वर्ण्य-विषय बने। उस समय से लेकर भारत में प्रचलित प्रायः सभी कला-शैलियों में हम इन विषयों की प्रमुखता पाते हैं। जब १७ वीं शती के अन्त में 'पहाड़ी शैली' का जन्म हुआ तो कृष्ण-लीला के प्रदर्शन का चेत्र अधिक व्यापक हो गया। लोगों में अपने उपास्य देव की विविध लोकरच्छक लीलाओं वाले चित्रों को देखने की बड़ी लालसा थी। पहाड़ी शैली में इस प्रकार के चित्र बड़ी संख्या में बनाये जाने लगे। भगवान् कृष्ण की समस्त लीलाओं के चित्रण हमें १८ वीं और १९ वीं शती में बने हुए पहाड़ी चित्रों में मिलते हैं। इस शैली में कृष्ण का मेघ वर्ण, उनकी भाव-भंगी, वस्त्रों की फहरान, देवेतर मानव-सौंदर्य का मनेहर अंकन एवं विविध प्राकृतिक उपकरणों का चित्रण बड़ी सफलता के साथ प्रदर्शित मिलता है।

साँझी—मथुरा की वर्तमान चित्रकारी में साँझी-कला विशेष उल्लेखनीय है। कुछ पौराणिक कथनों के अनुसार यह कला मथुरा में बहुत प्राचीन काल से है। अष्टलाप के समय से हमें स्पष्ट रूप से साँझी का पता चलता है। पहले यह फूलों की बनती थी और इसके दर्शन साँझ (संध्या) को कराये जाते थे। शायद इसीसे इसका नाम 'साँझी' पड़ा। वास्तव में संध्या या रात्रि के समय साँझी के दर्शन बहुत ही भले लगते हैं। दिन में साँझी की शोभा वैसी नहीं होती।

साँझी में पहले मिट्ठी का चौपहलू, उठपहलू या गोल चबूतरा बनाते हैं। फिर कटे हुए काशजों, (जिन्हें 'सांचे' कहते

हैं) की सहायता से उस पर यथास्थान विविध सूखे रङ्ग डाले जाते हैं। इन रङ्गों से देवी-देवताओं के चित्र बनते हैं; साथ ही अनेक प्रकार की पत्र एवं पुष्प-रचना तथा अन्य अलङ्कारण प्रदर्शित किये जाते हैं।

आजकल मथुरा में विशेषकर द्वारकाधीश के मन्दिर में ही साँझी बनती है, पर कुछ समय पहले यहाँ इसका बड़ा प्रचलन था और निम्नलिखित पाँच स्थानों की साँझी प्रसिद्ध थीं—

१. स्वामीघाट पर ज्योतिषी दाबा की साँझी।
२. कृष्णगङ्गा पर मनिया भट्ट की साँझी।
३. दशभुजी गणेश पर कूकाराम चौबे की साँझी।

(‘इसमें ४०-५० रुपों तक में चित्र बनाये जाते थे।’)

४. कंसखार के पास सरवर सुलतान की साँझी।
५. सतघड़ा में भीखा चौबे* का ‘साँझा’।

मथुरा के वर्तमान चित्रकारों में श्री ईश्वरीप्रसाद वर्मा तथा श्री जगन्नाथ अहिवासी के नाम उल्लेखनीय हैं। वर्मा जी कलकत्ता के आर्ट स्कूल में कला के शिक्षक हैं और अहिवासी जी बम्बई के जे० जे० स्कूल आक आर्ट में शिक्षक हैं।

* ये महाशय किसी भी शब्द के लिए स्त्रीलिङ्ग का प्रयोग न कर सदा पुलिङ्ग का ही प्रयोग करते थे।

४. सङ्गीत

मथुरा में सङ्गीत का प्रचलन बहुत मुराना है। ईस्यी पू० ३०० से लेकर ई० ६०० तक के कितने ही ऐसे अवशेष मथुरा कला में प्राप्त हुए हैं जिनसे पता चलता है कि सङ्गीत यहाँ के निवासियों के जीवन का एक अपरिहार्य अंग बन गया था। इन प्राचीन मूर्तियों में वंशी, वीणा, ढप, मृदंग आदि बाजे बजाते हुए स्त्री-पुरुष, विविध प्रकार के भाव प्रदर्शनों के साथ नृत्यों में तल्जीन बनिताएँ तथा यात्रोत्सवों में संगीत का आनन्द लेते हुए जन अद्वित मिलते हैं। ई० सातवीं से बारहवीं शती तक भी मथुरा में संगीत की धारा बहती रही, पर इस समय की संगीत परिचायक मूर्तियाँ कम उपलब्ध हुई हैं। इसके बाद से लगभग १६ वीं शती के प्रारम्भ तक तत्कालीन राजनैतिक वातावरण में मथुरा की सङ्गीत कला को गहरा धक्का पहुँचा। सोलहवीं शती के मध्य में बहुमुखी सांस्कृतिक पुनरुत्थान के साथ सङ्गीत का अवतरण एक बार किर ब्रजभूमि पर हुआ।

सोलहवीं शती से मथुरा में रास के वर्तमान रूप का प्रारंभ हुआ। कहते हैं कि सबसे पहले वल्लभाचार्य जी ने स्वामी हरिदास के सहयोग से विश्रांतघाट पर रास किया। इसके बाद श्री घमंडदेव तथा नारायणभट्ट जी ने ब्रज में इसका प्रचार किया।

रास ब्रज की अनोखी वस्तु है। इसमें संगीत के तीनों अंगों-गीत, गाये तथा नृत्य-का मधुर सम्मिश्रण है। ब्रज के

साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं कलात्मक जीवन को रास बड़ी मुन्द्रता के साथ अभिव्यक्त करता है। सौभाग्य से रास की परंपरा आज भी ब्रजमंडल में जीवित है।*

अष्टछाप-कवियों के समय ब्रज में संगीत की मधुर धारा प्रवाहित हुई। सूरदास, नंददास, कृष्णदास आदि स्वयं गायक थे। इन कवियों ने अपनी रचनाओं में विविध प्रकार के गीतों का अपार भंडार भर दिया। स्वामी हरिदास संगीत-शास्त्र के प्रकांड आचार्य एवं गायक थे। तानसेन-जैसे प्रसिद्ध संगीतज्ञ भी उनके शिष्य थे। सम्राट् अकबर भी स्वामी जी के मधुर गीतों के सुनने का लोभ संवरण न कर सका और इसके लिये भेष बदल कर वृन्दावन आया। मथुरा, वृन्दावन, गोवर्धन और गोकुल बहुत समय तक संगीत के केन्द्र बने रहे, जहाँ दूर दूर से संगीतज्ञ और कला-प्रेमी आकर इकट्ठ होते रहे। अष्टछाप-काल में मथुरा में ध्रुपद गायन-शैली का प्रचलन हुआ। यह

*रास के संबंध में विशेष जानकारी के लिये देखिए प्रभुदयाल मीतल—नारायण भट्ट (ब्रज भारती, सं० २००३, अंक २, पृष्ठ ६:११); कृष्णदत्त वाजपेयी—रास (ब्रजलोक संस्कृति, पृ० १३६-१४७) तथा संस्कृत साहित्य में रास (ब्र० भा०, वर्ष ६, सं० २ पृ० १०-१६) और रामनारायण अग्रवाल-रामलीला के प्रारंभ कर्ता (ब्र० भा०, व० ५, अं० ४, पृ० १२-१४)। कुछ समय से येश्वर (यू० एस० ए०) विश्वविद्यालय के छात्र श्री नारविन हाइन मथुरा-वृन्दावन में बड़े अध्यवसाय से रास-संबंधी अन्वेषण कर रहे हैं। आशा है इस विषय पर उनकी कृति महत्वपूर्ण होगी।

गायन-पद्धति कव्वाली, टुमरी आदि विदेशी गीत-शैलियों से भिन्न है और उनसे कहीं अधिक गंभीर है।

ई० १६ वीं शती में मथुरा में कई बड़े संगीतज्ञ हुए। श्री गणेशीलाल चौबे उत्तर भारत की शुद्ध गायकी में अपने समय में अद्वितीय थे। प्रसिद्ध संगीत-शास्त्री विष्णुदिगंबर जी ने उनसे बहुत बातें सीखीं। नैपाल, ग्वालियर आदि के शासकों ने चौबेजी की गायकी पर मुग्ध होकर उन्हें प्रभूत धन दिया। विष्णु दिगंबर जी के अतिरिक्त ग्वालियर के भइया साहब, माधवजी आदि इनके शिष्य थे। गणेशीलाल जी के बाद मथुरा में प्रसिद्ध गायक चंदन जी हुए। ये ध्रुपद, धमार तथा कीर्तन साहित्य के अन्य अंगों के बहुत बड़े जानकार थे। ये ध्रुपद गायकी के तो महान् कलाकार थे। इनकी मृत्यु कोई आठ वर्ष पहले हुई है।

वाद्य संगीत के जानकारों में वंशीधर जी, छोटेलाला, बड़ेलाला, लालन चौबे, अयोध्यानाथ जी, औघड़ चौबे और चतुरा पखावजी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। वंशीधर जी सारंगी के बजाने में भारत-विख्यात थे। इसी प्रकार गणेश चौबे (उपनाम छैया) तबला बजाने में बहुत प्रसिद्ध थे।

प्राचीन मथुरा में संगीत गुण-ग्राहक भी बहुत थे। इनमें सेठ लछमनदास जी, गोपाललाल महाराज, राधाकृष्ण जी चूड़ी वाले तथा बाबू जगन्नाथ सरीन वकील के नाम चिर-स्मरणीय रहेंगे। इन महानुभावों ने इस कला के प्रवर्धन में बड़ा योग दिया।

मथुरा के वर्तमान संगीतज्ञों में मूंगाजी, लक्ष्मणजी, शिवकुमार जी तथा बालकृष्ण जी (चंदनजी के पुत्र) प्रमुख हैं। रास के अतिरिक्त मथुरा में लोक संगीत के कई मनोहर रूप-छद्म, धमार, न्यौरता, रसिया, भगत आदि प्रचलित हैं। अहीरों, धोवियों और चमारों के नृत्य अब भी बड़े आकर्षक होते हैं।

५. साहित्य

मथुरा में बहुत प्राचीन काल के साहित्यिक विकास का पता नहीं चलता। यहाँ से जो पुराने शिलालेख मिले हैं उनमें से अधिकांश की भाषा प्राकृत या संस्कृत-मिश्रित प्राकृत है। शुद्ध संस्कृत का सबसे प्राचीन लेख राजा षोडास के समय का मिला है, जो ई० पूर्व प्रथम शती का है। यह लेख पद्म में है। शक-क्षत्रप संस्कृत तथा प्राकृत दोनों के आश्रयदाता थे। उनके समय में मथुरा में पुस्तकालय होने के भी उल्लेख मिले हैं। कुषाणों के समय में प्राकृत का प्रचार बढ़ा, परंतु गुप्त शासन काल में फिर संस्कृत की उन्नति हुई। मथुरा प्रदेश में जो प्राकृत प्रचलित हुई वह 'शौरसेनी प्राकृत' कहलाई। अपनी कोमलता एवं सरसता के कारण यह भाषा बहुत समय तक उत्तर भारत की प्रमुख भाषा बनी रही। इसी से शौरसेनी अपभ्रंश बनी, जो आगे चलकर ब्रज भाषा के रूप में विकसित हुई। ब्रज भाषा की व्यापकता धीरे-धीरे शौरसेनी प्राकृत की अपेक्षा कहीं अधिक बढ़ गई और उसे लगभग चार सौ वर्षों तक भारत के एक बड़े भाग की राष्ट्र भाषा बनने का गौरव प्राप्त रहा।

यद्यपि ब्रज भाषा की प्रारंभिक रचनाएँ ई० चौदहवीं शती के मध्य से मिलने लगती हैं पर उसका विकसित साहित्यिक रूप भक्तिकालीन अष्टछाप की कविताओं में प्राप्त होता है। श्रीकृष्ण के सगुण रूप को लेकर उनकी मधुर लीलाओं पर भक्त कवियों ने कितनी ही सुन्दर रचनाएँ कीं। अष्टछाप के आठ महानुभाव कुंभनदास, सूरदास, परमानन्ददास, कृष्णदास गोविंदस्वामी, नन्ददास छीतस्वामी और चतुर्भुजदास हैं। यद्यपि इनमें छीतस्वामी को छोड़कर अन्य सबका जन्म मथुरा नगर के बाहर हुआ था, तो भी ये 'आठों सखा' ब्रज में बहुत दिनों तक रहे। गोवर्धन इनका प्रधान केन्द्र था। इनमें से केवल तीन कवियों के पद हम नीचे देते हैं। इनके पढ़ने से ज्ञात होगा कि इन महान् साहित्यकारों के हाथों निखर कर ब्रज भाषा का रूप कितना सुन्दर हो गया !

सूरदास—

१.

खंजन नैन रूप-रस माते ।

अतिसै चारु चपल अनियारे, पल पिंजरा न समाते ॥

चलि चलि जात निकट स्वननि के, उलटि-पलटि ताटक फँदाते ॥

'सूरदास' अंजन-गुन अटके, नतरु अबहिं उड़ि जाते ॥

२.

मैया मोरी मैं नहिं माखन खायौ

भोर भयौ गैयन के पाछे मधुबन मोहि पठायौ ।

चारि पहर बंसीबट भटक्यौ, साँझ परे घर आयौ ॥

मैं बालक बहिणन कौ छोटौ, छीकौ किहि विधि पायौ ।

ब्बाल बाल सब बैर परे हैं, बरबस मुख लपटायौ ॥

तू जननी मन की अति भोगी, इनके कहे पतितायौ ।
जिथ तेरे कछु भेद उपजिहै, जानि पराशौ जायौ ॥
यह लै अपनी लकुट-कमरिया, बहुतहि नांच नचायौ ।
‘सूरदास’ तब बिहंसि जसोदा, लै उर कंठ लगायौ ॥

३.

उधौ, मोहिं ब्रज विसरत नाहीं ।

हंस-सुता की सुंदर कगरी, अमु कुंजन की छाहीं ॥
वे सुरभी, वे बच्छ दोहनी, खरिक दुहावन जाहीं ।
भालबाल सब करत कुलाहल, नाँचत गहि-गहि बाहीं ॥
ये मथुरा कंचन की नगरी, मनि मुकताहल जाहीं ।
जबहि सुरति आवत वा सुख की, जिय उमगत तनु नाहीं ॥
अनगन भाँति करी बहु लीला, जसुदा-नंद निबाहीं ।
‘सूरदास’ प्रभु रहे मौन है, यह कहि-कहि पछिताहीं ॥

परमानंद दास—

ब्रज के विरही लोग विचारे ।

बिन गोपाल ठगे से ठाढ़े, अति दुर्बल तन हारे ॥
मात जसोदा पंथ निहारत, निरखत साँझ सकारे ।
जो कोउ ‘कान्ह-कान्ह’ कहि बोलत, अंखियन बहत पनारे ॥
ये मथुरा काजर की रेखा, जे निकसे ते कारे ।
‘परमानंद’ स्वामि बिन ऐसे, जैसे चंदा बिनु तारे ॥

छीत स्वामी—मथुरा के चतुर्वेदी परिवार में इनका जन्म सं० १५७२ (१५१५ई०) में हुआ । इनका कोई ग्रंथ नहीं मिला । विवृत जी तथा यमुना जी की स्तुति रूप में इन्होंने पढ़ लिखे हैं । कुल पदों की संख्या ४०० से ऊपर है । नमूने के तौर पर दो पद नीचे दिये जाते हैं—

१.

मेरी अंखियन के भूषन गिरिधारी ।

बलि-बलि जाउँ छवीली छवि पर, अति आनंद सुखकारी ॥
 परम उदाहर, चनुर चितामनि, दरस-परस दुखहारी ।
 अतुल सुभाव तनक तुलसी दल, मानत सेवा भारी ॥
 'छोतस्वामि' गिरिधरन बिसद जस, गावत हैं कुलनारी ।
 कहा वरन गुन-गाय नाथ के, श्री विठ्ठल हृदय विहारी ॥

२.

दोऊ कूल खंब तरंग सिढो मानों जमुना जू जगत बैहुठ निसेंनी ।
 अति अनुकूल कलोलन के भार लिएँ जात हरि के चरनन सुख दैनी ॥
 जनम-जनम के दुकृत दूरि करनी काटत करम-धरम धार पैनी ।
 'छोतस्वामि' गिरधर जू की प्यारी साँवरे अंग कमल-दल नैनी ॥

ई० सत्रहवीं शती के मध्य-काल से ब्रजभाषा-साहित्य के रीति युग का आरम्भ हुआ और वह लगभग पूरी दो शताब्दी तक बना रहा । इस काल के कवियों की रचनाएँ शृङ्गार-प्रधान मिलती हैं । कविता अब मुख्तया राजाश्रित होगई और एक संकुचित सीमा से बैंय जाने के कारण उसमें वे भाव न द्यक्त किये जा सके जो भक्तिकालीन कविता में पाये जाते हैं । अब कवियों की सूचि और रूमान कल्पना, चमत्कार-वरणेन तथा शब्दजाल की ओर अविक होगई । कुछ लोग राधा-कृष्ण की आड़ में शृङ्गार की अति तक पहुँचने लगे । यद्यपि रीतिकालीन साहित्य तत्कालीन जनता के एक भाग की दृष्टिं मनोवृत्ति का परिचायक है तो भी उसमें स्वस्थ शृङ्गार, शांत एवं वीर रस की उत्कृष्ट रचनाएँ भी मिलती हैं ।

मथुरा नगर में इस काल में अनेक कवि और कलाकार हुए । उनमें से कुछ का संक्षिप्त कथन नीचे किया जाता है—

कृष्ण कवि—इनका कविता-काल १७३० ई० के लगभग है। इन्होंने 'विहारी सतसई' के ऊपर टीका की है। सतसई के दोहों का भाव बड़ी सुन्दरता से सबैयों में व्यक्त किया गया है। एक उदाहरण दिया जाता है—

"सीस मुकुट कटि काछनी, कर मुरली उर माल । ।

यहि बानिक मो मन सदा, बसौ विहारीलाल । ।"

विहारी के इस दोहे पर सबैया है—

ल्लवि सों फवि सीस किरीट बन्यो, सचिसाल हिए बनमाल लसै ।

कर कंजहि मंजु रली मुरली, कछनी कटि चारु प्रभा बरसै ।

कवि कृष्ण कहैं लखि सुंदर भूरति, यों अभिलाष हिए सरसै ।

वह नन्दकिसोर विहारी सदा, यहि बानिक मों हिय मांझ बसै ॥

सूदन—ये मथुरा के चौबे थे और भरतपुर के राजा सूरजमल (उपनाम सुजान सिंह) के यहाँ रहते थे। उनके चरित्र का वर्णन इन्होंने 'सुजान चरित्र' नामक एक बड़े काव्य ग्रंथ में किया है। यह ग्रंथ सात 'जंगों' (अध्यायों) में है और इसमें १७४५ से १७५३ ई० तक की राजनैतिक हलचलों का वर्णन किया गया है। अतः १७५३ ई० के बाद ही इसकी रचना हुई होगी। सूदन बीर रम के कवि थे। इनकी कविता बड़ी ही ओजपूर्ण है—

कंध्यौ मानों काल सौ बदन महिपाल पूत,

दीठि बाँकी करिकै निहारै ओर तू जाकी ।

तू ही अवतार भुव भार के उतारन कौं,

सार के सम्भार नहि ताव नर दूजा की ॥

'सूदन' समत्थ अरि रूँपेन कौं पत्थ मम,
कीरति अकत्य रतनाकर लौं मूजा की ।
दिल्ही दल दहन सुकहन मलेच्छ बंस,
देस-देस जाहिर प्रचंड तेग मूजा की ॥

परंतु कभी-कभी सूदन जी इतने धर्दाए में लिख मारते
थे कि उनकी लेखनी से प्रमूर शब्द भी संग्राम करते-से प्रतीन
होते थे । उदाहरण के लिये उनका निम्नलिखित छंद काकी
होगा—

घडघद्धरं घडघद्धरं भडभव्वरं भडभव्वरं ।
तडतत्तरं तडतत्तरं कडककरं कडककरं ॥
घडघम्घरं घडघम्घरं भडभव्वरं भडभव्वरं ।
अररररं अररररं सररररं सररररं ॥

ग्वाल—इनका कविता-काल १८२२ से १८६१ ई० तक
माना गया है । इन्होंने भारत में बहुत भ्रमण किया था और
इन्हें अनेक प्रांतीय बोलियों का ज्ञान था । इनकी रचनाएँ
यमुना-लहरी, रसिकानंद, रमरंग, गोपी-पञ्चीसी, कुब्जा-अष्टक,
भक्तभावन आदि हैं । इनकी बहुत सी कविताओं का संग्रह
'कवि-हृदय विनोद' है । इनकी रचनाओं के दो नमूने दिये
जाते हैं—

(शरद—वर्णन)
मौरन के मौरन की नेकी न मरोर रही,
वोर हू रही न घन घने या फरद की ।
अंवर अमल, सर मरिता विमल मल,
पंक को न अंक औ न उड़न गरद की ॥

'म्बाल कवि' चित्त में चकोरन के चैन मण,
पंथिन की दूर मई दूषन दरद की ।
जल पर, थल पर, महल अचल पर,
चाँदी-सी चमकि रही चाँदनी सरद की ॥

(अपने लड़कों को शिक्षा)

चाहिये जरुरी हंसानियत मानुस को,
नावत बजे पै केरि मेरि बजिबौ कहा ।
जात औ कुजात, हिंदू और मुसलमान क्या,
जासौं कियाँ नेह केरि वासौं तजिबौ कहा ॥
'म्बाल कवि' जाके लिये सीस पै बुराई लई,
जाज हू लजाई केरि लाज लजिबौ कहा ।
कै तो रंग काढू के न रंगिये मुजान प्यारे,
रंगे ती, रंगेई रहौ, केरि तजिबौ कहा ॥

नवनीत जी—नवनीत जी चौबे यद्यपि रीतिकाल में
नहीं हुए पर वे ब्रजभाषा साहित्य की रीतिकालीन काव्यधारा
की एक उड्जवल ऊर्मि हैं। ये बीसवीं शती की मथुरा के एक
महान् कवि माने जाते हैं। इनकी मृत्यु कुछ वर्ष पूर्व हुई है।
इन्होंने श्यामांगावयवभूषण, गोपी प्रेम पीयूष प्रवाह, कुञ्जा-
पञ्चीसी, मूर्खशतक आदि कई ग्रंथों की रचना की। इनके
फुटकर छंदों की संख्या भी बड़ी है। नीचे इनकी सरस कविता
का एक उदाहरण दिया जाता है—

मूलि जिन जैशो ब्रजराज, बरसाने कहूँ
गोरिन के गोल ते किसोरी जो निहारैगो ।
घोर रंगरंगिन ते केसर कमोरिन ते,

प्रीति भक्तोरिन ते पकरि पछारैगी ॥
 याद करि साँकरी गली की लूट गोरस की,
 सो रस की 'नीत' आजु कसर निकारैगी ॥
 मल के गुलाल रस ख्याल में गुपाल गाल,
 देखत ही लाल, तुम्हैं लाल करि ढारैगी ॥

उपर्युक्त प्रसिद्ध कवियों को छोड़ कर मथुरा नगर में
 रीतिकालीन परिपाटी के कवियों में हरलाल माथुर (रास-
 पञ्चाध्यायी ब्रज परिक्रमा आदि ग्रन्थों के लेखक), सोगनाथ
 (अलङ्कार ग्रन्थ 'रस-पौयूष' के कर्ता), ओढ़दाम (उपनाम
 दामोदर), खूबचन्द और खेमचन्द (ग्वाल कवि के लड़के),
 हीरालाल चौबे, रामचन्द्र आदि थे। ग्वाल के शिष्य खड़ग,
 वेगुन मुसलमान, साधूराम अग्रवाल और किशोर अच्छे कवि
 थे। नवनीत जी के शिष्यों में किशनलाल 'पापड़ वाले'
 ('गजेन्द्रमोक्ष' के लेखक, मेघदूत के अनुवादक एवं शतरंज
 के नामी खिलाड़ी), और भोलाराम भण्डारी प्रतिभाशील
 कवि थे।

मथुरा के वर्तमान कवियों की चर्चा अंतिम अध्याय में
 की जायगी।

मथुरा नगर में १८ वीं और १९ वीं शती में कुछ ऐसे
 भी लेखक हुए जो रीतिकालीन परंपरा से स्वतन्त्र थे और कवि
 होने के साथ कलाकार भी थे। १८ वीं शती के कवि मनियाँ
 भट्ट नाट्य में उत्ताद थे। १९ वीं शती के कवि-कलाकार बाबू
 श्यामाचरन (ऊषाचरित, रुक्मणीहरण आदि ग्रन्थों के

प्रणेता), बिरजूसिंह, कल्लासिंह, चुन्नीलाल, बब्बेसिंह, वल्लभ जी, विदुर जी, हरसुख उस्ताद, नरायनदास भगत, नत्थन जड़िया, नैनसुख, मानिकलाल, सुन्दरलाल वैश्य, कल्लन सुनार आदि थे । इन लोगों ने अनेक प्रकार के गेयपद, स्वाँग और नाटक लिखे । इनमें आशुकवि मानिकलाल चौबे विख्यात कलाकार थे । उनका कहना था कि अन्य कवियों में तो एक या अधिक से अधिक दो गुण ही होते हैं पर उनमें कविता, गाना और नाचना ये तीनों कन थे —

“ये जेते सब कवि भये एक-एक गुनहीन ।
कथनो, गानो, नाचनो मानिक में गुन तीन ॥”

६. अन्य कलाएँ

(क) ज्योतिष—मथुरा नगर ज्योतिष का भी केंद्र रहा है । परंतु इस संबंध में १८ वीं शती से पूर्व का इतिहास उपलब्ध नहीं है । राजा मानसिंह ने १६ वीं शती में मथुरा में यमुना-तट पर जो किला बनवाया उसमें जयपुर के विद्वान् एवं यशस्वी शासक सवाई जयसिंह ने एक वेधशाला की स्थापना १७२५ ई० के लगभग की । जयसिंह ने मथुरा के अतिरिक्त दिल्ली, जयपुर, उज्जैन और दनारस में भी वेधशालाओं का निर्माण कराया । इनमें अनेक प्रकार के यंत्र रखे गये । कुछ यंत्र नये ढंग पर प्रस्तुत किये गये थे । जयसिंह स्वयं अच्छे ज्योतिर्विद् थे । उन्होंने एक दार युरोप से आये हुए गणित-ज्योतिष संबंधी नक्शों की जाँच कर उन्हें गलत सिद्ध कर दिया था । खेद है कि मथुरा किले पर निर्मित उनकी

वेधशाला इस प्रकार नष्ट कर दी गई है कि अब उसका कोई भी निशान नहीं शेष रहा।

मथुरा में ज्योतिष-कला के परवर्ती विकास का प्रधान श्रेय यहाँ के 'ज्योतिषी बाबा' परिवार को है। सबसे पहले इस परिवार में श्री कृपाशंकर जी (१७४४-८४ ई०) प्रसिद्ध पंडित हुए। वे तुकोजी राव होल्कर के प्रधान ज्योतिषी थे। होल्कर ने उन्हें 'ज्योतिषी बाबा' की उपाधि थी और उनके पांडित्य से प्रभावित होकर उन्हें कई गाँव दिये। उनके पुत्र गोविंदलाल जी थे गोविंदलाल जी के पुत्र कुंजीलाल जी के तीन पौत्रों—माधवलाल जी, विभाकर लाल जी और शिव प्रकाश जी—में अंतिम सबसे प्रसिद्ध हुए। उन्होंने ज्योतिष पर कई ग्रन्थ लिखे और अनेक प्रकार की घड़ियों तथा गोलार्ध, मर्कटी यंत्र, लग्न बोधक, यष्टि, खगोल आदिक यंत्रों का निर्माण किया। इनमें से अधिकांश यंत्र भूतेश्वर के पास अब भी रखे हैं और कुछ श्री शिवप्रकाश जी के भतीजे ज्यो० राधेश्याम जी के पास सुरक्षित हैं। ये सभी यंत्र दर्शनीय हैं।

ज्योतिष के यंत्र-निर्माताओं में कल्ला मिस्त्री का नाम भी देना आवश्यक है। ये धूसर पाढ़ा में रहते थे। इन्होंने सूर्य घड़ी, नक्षत्र घड़ी आदि कई प्रकार की घड़ियों और कुछ अन्य यंत्रों का निर्माण किया।

मथुरा के अन्य ज्योतिषियों में भगवाना पंडित, कुलकी जी, प्रभुदयाल जी तथा चंद्रशेखर शास्त्री के नाम उल्लेखनीय हैं।

(ख) मल्ल कला—मथुरा नगर मल्ल विद्या के लिये बहुत प्राचीन काल से प्रसिद्ध रहा है। कंस के पहलवान चाणूर, भुष्टिक आदि अपने समय के प्रख्यात मल्ल थे। मथुरा का एक मुहळा अब भी 'मल्लपुरा' के नाम से प्रसिद्ध है। वहाँ कंस के पहलवानों तथा उनके उत्तराधिकारियों का निवास रहा होगा। मथुरा में मल्ल-कला की प्राचीन परंपरा को अब तक जारी रखने का प्रधान श्रेय यहाँ के चौबों को है। इनकी बगीचियाँ अब भी इस कला का केन्द्र बनी हुई हैं। चौबों के अतिरिक्त जाटों और कुछ सनात्य ब्राह्मणों ने भी मथुरा में इस कला को उन्नत किया।

१८ वीं शत में मथुरा के दो पहलवान अलिदत्त और कुलिदत्त बहुत प्रसिद्ध थे। कहा जाता है कि ये अपने हाथ से नाप कर सवा हाथ की रोटी खाते थे। महादजी सिंधिया और खाँडिराव के यहाँ मथुरा के चुने हुए पहलवान रहते थे। १८ वीं शती के अन्य प्रख्यात पहलवान धीरा, फकीरा, उद्धवसिंह, माखनसिंह, हौआ, हीरा गुरु, भङ्गा गुरु, खंगूसिंह, भैंवरजी, नत्थीजी, देविया, भबद और गदना थे। धीरा-फकीरा, देविया और भबद के बारे में प्रसिद्ध है कि वे शेर से कुश्ती लड़े थे और उसे पछाड़ दिया था। माखनसिंह जी मल्लशास्त्र के पण्डित भी थे और उन्होंने 'मल्लपुराण' की रचना की। १९ वीं शती में मथुरा के उल्लेखनीय पहलवानों में दाऊ गुरु, पीनूजी, दंगी गुरु, लंगड़ पहलवान, तपियाँ, चूचूँ, खुशाला, महादेव जाली, नीता, छीतूसिंह, भोंदू, लोकटी, देवीदास, रतना, गोपीनाथ और विश्वंभर थे।

मथुरा के वर्तमान पहलवानों में मुख्य ये हैं—
धूजी, टेउँआ, बलदेवजी, थड़े और मधुसूदन।

अब हम मथुरा के दिवंगत प्रमुख संत-महात्माओं, तांत्रिकों एवं अन्य कुछ महानुभावों का उल्लेख कर इस अध्याय को समाप्त करेंगे।

प्राचीन मथुरा में उच्चकोटि के कितने ही सन्त-महात्मा रहे होंगे, परन्तु उन सबके नाम ज्ञात नहीं हैं। नाभादाम जी के समकालीन कीलजी नामक महात्मा का उल्लेख साहित्यिक ग्रंथों में मिलता है, जो मथुरा में रहते थे। उनके बाद यहाँ 'सम्राट्' दीक्षितजी, बाबा किशनदासजी, ब्रह्मचारीजी, (झाली घाट वाले), शीलचन्द्रजी (जिन्होंने वर्तमान महाविद्या का मन्दिर ठीक कराया) और विरजानन्दजी ऊंचे सन्त हुए। विरजानन्दजी दंडीघाट पर रहते थे। इनके गङ्गादत्त, रङ्गदत्त आदि आठ प्रधान शिष्य थे। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने बहुत दिन तक विरजानन्दजी से शिक्षा प्राप्त की। दयानन्दजी मथुरा में १५-१६ वर्ष तक रहे बताये जाते हैं। ये पहले विश्राम घाट पर रहते थे और ज्योतिषी बाबा के यहाँ भोजन करते थे, फिर सतघड़ा मुहल्ला में रहने लगे थे। विरजानन्दजी के बाद मथुरा में नरहरी बाबा, मोतीदत्तजी, नन्दनजी, वनमालीजी (इन्हें समस्त महाभारत कण्ठस्थ थी) और मुकुन्दरामजी प्रसिद्ध सन्त हुए।

१६ वीं शती में मथुरा में योग-तन्त्र के दो महान् ज्ञाता वासुदेव महाराज और रजूजी योगिराज हुए। ये अनेक प्रकार की तांत्रिक क्रियाएँ जानते थे।

मथुरा के आयुर्वेद-वेत्ताओं में गोलनजी, राधामोहनजी, बालकृष्णजी, राधावल्लभजी, जानकीप्रसादजी तथा हरिदासजी के नाम उल्लेखनीय हैं। हरिदासजी ने 'चिकित्सा चन्द्रोदय' आदि वैद्यक के कई प्रन्थों की रचना की है।



अध्याय ५

वर्तमान मथुरा

स्थिति—वर्तमान मथुरा शहर उत्तर प्रदेश के धुर पश्चिमी भाग में स्थित मथुरा ज़िले का प्रधान नगर है। अब भारत के किसी भी स्थान से मथुरा आसानी के साथ पहुँचा जा सकता है। दिल्ली से बम्बई और मद्रास की ओर जाने वाली बी० बी० सी० आई० तथा जी० आई० पी० रेलवे की बड़ी लाइनें मथुरा होकर गुजरती हैं। भारत के उत्तरी, पश्चिमी तथा दक्षिणी भागों से इन्हीं लाइनों से रेल द्वारा मथुरा पहुँचना सुविधा जनक है। पूर्व तथा दक्षिण पूर्व भारत की ओर से मथुरा पहुँचने के लिये दो मार्ग हैं—पहला ईस्ट इण्डिया रेलवे की बड़ी लाइन पर स्थित दूंडला से आगरा होकर, और दूसरा उसी लाइन के हाथरस ज़ङ्कशन स्टेशन होकर। कानपुर से बी० बी० सी० आई० रेलवे द्वारा सीधे भी मथुरा पहुँच सकते हैं। मथुरा शहर में चार रेलवे स्टेशन हैं—मथुरा ज़ङ्कशन, छावनी, भूतेश्वर और मसानी। रेल के अलावा मोटर द्वारा भी मथुरा पहुँचा जा सकता है। अब मथुरा के प्रायः सभी निकटवर्ती शहरों से यहाँ तक सरकारी बसें भी आने-जाने लगी हैं।

मथुरा नगर हिन्दुओं की पवित्र यमुना नदी के तट पर बसा है। केवल ग्रीष्म में कुछ दिन नदी की धारा के बीच-बीच रेती निकल आती है, अन्य ऋतुओं में धारा चिलकुल शहर के नीचे से बहती है। यमुना का द्वाव शहर के लगभग आधी दूर तक दक्षिण की ओर है और उसके बाद पूर्वकी ओर। नदी की परली पार से मथुरा का दृश्य मनोहर लगता है।

नगर की दसावट नदी के किनारे-किनारे अधिक है। पूर्व-पश्चिम की अपेक्षा उत्तर-दक्षिण की ओर की लम्बाई अधिक है। अङ्गरेजों के शासन-काल में नगर का प्रसार दक्षिण तथा दक्षिण-पूर्व की ओर विशेष रूप से हुआ। फौजी छावनी, स्टेशन, सदर बाजार आदि का दनना इस प्रसार का मूल कारण था। अबसे लगभग ३५ वर्ष पूर्व होली दरबाजा के दक्षिण-पश्चिम की ओर मथुरा के लोक-प्रिय कलेक्टर डैम्पियर के नाम पर 'डैम्पियर पार्क' * तथा 'डैम्पियर नगर' की स्थापना हुई। धीरे-धीरे डैम्पियर नगर बढ़ कर शहर का एक प्रमुख मुहळा बन गया है।

नगर की परिक्रमा—मथुरा के चारों ओर मिट्ठी की एक चौड़ी नगर-दीवाल के भग्नावशेष दिखाई पड़ते हैं। इस दीवाल को 'धूलकोट' कहते हैं और इस के बाहर-बाहर चल कर नगर की परिक्रमा दी जाती है। † यह धूलकोट कब बना,

* हाल में इसका नाम बदल कर 'भगतसिंह पार्क' हो गया है।

† यह परिक्रमा 'पंचकोसी' कहलाती है। ब्रज चौरासी कोस की परिक्रमा इससे भिन्न है। उसमें ब्रज के सभी मुख्य तीर्थों की यात्रा

यह निश्चित रूप से नहीं बताया जा सकता। पुराणों से ज्ञात होता है कि मथुरा नगर में बहुत प्राचीन काल में पुरकोटा या नगर-दीवाल थी। किसी समय यह दीवाल पत्थर की थी और इसमें पत्थर के कई बड़े फाटक (गोपुर) बने हुए थे। संभवतः वर्तमान धूलकोट शुङ्गों या शक द्वात्रपों के समय का है। यह धूलकोट ध्रुवटीले से चल कर कंसटीला, हरि पर्वत, गायत्री टीला होता हुआ हुआ भूतेश्वर जाता है और वर्तमान वाटर-वर्क्स के पीछे से उत्तर की ओर मुड़ कर महाविद्या की ओर सीधा जाता है। वहाँ से वह गोकर्णेश्वर की ओर चला जाता है। प्राचीन नगर की सीमा इसी धूलकोट से आवृद्ध रही होगी।

वर्तमान नगर-परिक्रमा प्रत्येक एकादशी * तथा अक्षयनौमी (कार्तिक शु० ६) को लगती है। इसमें नगर के प्रायः सभी मुख्य धार्मिक स्थान आ जाते हैं। वराह पुराण के 'मथुरा-माहात्म्य' में इस परिक्रमाका विस्तृत वर्णन मिलता है।

हो जाती है, जो लगभग ८४ कोस लम्बी होती है। वह प्रायः भाद्रों के महीने में प्रारम्भ होकर लगभग डेढ़ महीने में समाप्त होती है।

* देवशयनी एकादशी (कार्तिक शु० ११ के दिन कुछ लोग मथुरा के साथ वृन्दावन की भी परिक्रमा करते हैं। इस बड़ी परिक्रमामें गरुड़ गोविन्द के भी दर्शन किए जाते हैं। वैशाख शु० पूर्णिमा की रात को मथुरा नगर की परिक्रमा की जाती है। इसे 'वन विहार की परिक्रमा, कहते हैं। इसमें साथ-साथ गाना-बजाना भी होता चलता है।

यात्रा का प्रारम्भ विश्रामघाट से होता है। यहाँ से गतश्रम मन्दिर, पिपलेश्वर महादेव, प्रयागघाट, बेनीमाधव मन्दिर, श्यामूजी, दाऊजी, मदनमोहनजी का मन्दिर तथा गोकुलनाथ जी के दर्शन करते हुए कनखल तीर्थ पहुँचते हैं। वहाँ से तिंदुक देव, सूर्य घाट, ध्रुव देव, ध्रुव टीला, सप्तर्षि टीला, कोटि तीर्थ, रावण तीर्थ, बुद्ध तीर्थ और बलि टीला होते हुए रङ्गेश्वर महादेव पहुँचते हैं। वहाँ से शिव ताल आकर फिर कङ्काली देवी, बलभद्रकुण्ड और भूतेश्वर के दर्शन कर पोतरा कुण्ड आते हैं। यहाँ से यात्रा जन्म-स्थान पर बने केशवदेवजी के मन्दिर में आया करती थी, पर औरङ्गजेब के समय में मन्दिर नष्ट हो जाने पर और वहाँ मस्जिद बन जाने के कारण परिक्रमा पोतराकुण्ड से वर्तमान केशव मन्दिर, कुब्जा कूप और गलतेश्वर महादेव होकर महाविद्या पहुँचने लगी है। महाविद्या से सरस्वती मन्दिर और कुण्ड होते हुए चामुण्डा, गणेश तीर्थ, गोकर्णेश्वर महादेव और सरस्वती संगम होकर दशाश्वमेध घाट पहुँचते हैं। वहाँ से चक्रतीर्थ, कृष्णगङ्गा, सोम-तीर्थ, गौघाट, घंटाभरन, कंस किला, ब्रह्मघाट, धारापतन और स्वामीघाट होते हुए असिकुण्डा घाट आते हैं। यहाँ से द्वारकाधीश के मन्दिर के दर्शन कर विश्राम घाट में पहुँच जाने पर परिक्रमा समाप्त होती है।

मथुरा के मुख्य मंदिर—वर्तमान मथुरा में वैष्णव

प्रदाय के ही मंदिर अधिक हैं, जिनमें मुख्यतया श्रीकृष्ण और उनकी शक्ति राधा की मूर्तियाँ मिलती हैं। कुछ मंदिरों की संक्षिप्त चर्चा नीचे की जाती है—

१. द्वारकाधीश—यह मथुरा का सबसे प्रधान मंदिर है और शहर के मध्य असिकुंडा बाजार में स्थित है। इसे १८१४-१५ ई० में ग्वालियर राज्य के कोषाध्यक्ष सेठ गोकुल दास जी पारिख ने बनवाया। इसकी पूजा का कार्य कांकरेली के पुष्टिमार्गीय गोस्वामियों के अधीन है। इसके व्यय के लिये कई गौव लगे हैं। मंदिर में बहुत शुद्ध प्रसाद तैयार होता है। अक्कूट के दिन तथा अन्य अवसरों पर बहुत से साधु एवं विद्यार्थी प्रसाद पाते हैं। यहां बराबर उत्सव होते रहते हैं। द्वारकाधीश जी की चतुर्मुँजी मूर्ति का सिंगार शावणि-भूला, जन्माष्टमी आदि उत्सवों पर बहुत सुंदर होता है। मंदिर के अंतर्गत एक संस्कृत पाठशाला है, जिसमें आचार्य तक की शिक्षा दी जाती है।

२. गतश्रमनारायण—विध्रांतघाट के पास; इसे १८०० ई० के लगभग प्राणनाथ जी शास्त्री ने बनवाया। यह श्री रामानुज संप्रदाय का मंदिर है। इसके पीछे प्राचीन गतश्रम-मंदिर है। यहां टीले से गोवर्धनधारी कृष्ण की एक बड़ी प्राचीन मूर्ति मिली थी, जो अब मथुरा संग्रहालय में है।

३. गोवर्धन नाथ—स्वामी घाट के पास; इसे बड़ौदा राज्य के कामदार बाबू सेठ ने १८३० ई० में बनवाया। गोवर्धन नाथ जी का एक मंदिर कंसखार पर भी है।

४. बिहारी जी—स्वामी घाट पर; महू (मध्य भारत) के छक्की लाल कन्हैया लाल सेठ ने १८५० में बनवाया।

राधाकृष्णन का मंदिर—छत्ते बाजार में; १८७०-७१ में देवचंद बौहरे ने ४०,०००) के व्यय से बनवाया।

६. विजय गोविंद—सतघड़ा मुहल्ला, १८६७ ई० में दतिया के विजयराम बौहरे ने ६५,०००) से इस मंदिर का निर्माण कराया।

७. गोविंद देव—नकारची टीला के पास, रामगढ़ के गुरु-सहाय मल और घनश्याम दास पीढ़ीदार ने १८४८ ई० में बनवाया ।

८. बलदेव—कंस खार में; १८२५ ई० शेरगढ़ के कुशालीराम बाहरे ने बनवाया । दूसरा बलदेव जी का मंदिर होली दर्वजे के पास है ।

९. गोपीनाथ—होरी बाजार में, चूड़ी वाले सेठीं के द्वारा १८६६ ई० में बनवाया गया ।

१०. वराह जी—मानिक चौक में, वराह भगवान की सुंदर मूर्ति है ।

११. बेनीमाधव—प्रयाग घाट पर ; यह रामानुज सम्प्रदाय का मंदिर है ।

१२. श्रीराम मंदिर—रामजी द्वारे में ; रामनवमी के दिन बड़ा उत्सव मनाया जाता है ।

१३. कंस निकंदन—होली गली में है ।

१४. वीर भद्रेश्वर—चौबचा मुहल्ले में ; इसे बनारस के राजा पट्टनीमल ने १६ वीं शती के प्रारम्भ में बनवाया था ।

१५. दीर्घ विष्णु—वीया मंडी में ; यह भी राजा पट्टनीमल का बनवाया है ।

१६. भैरव नाथ—लोहिया गली में ; इसे सरवर सुलतान का मंदिर भी कहते हैं । इसमें सभी जातियों के लोग, विशेषकर मुसलमान, दर्शन करने आते हैं । यहाँ मुसलमान फकीर सरवर सुलतान का स्मारक है ।

१७. मंदिर किशोरी गमण—यह किशोरी लाल जी भाग्वद द्वारा बनवाया गया था । इस मंदिर की एक सुंदर वाटिका भी है । मंदिर में संगीत का आयोजन अब भी अच्छा हुआ करता है ।

१८. महाविद्या—यह मंदिर नगर के बाहर एक ऊँचे टीले पर बना है। यह १७ वीं शतां के अंत में पंश्वा के द्वारा बनवाया गया था, फिर शीलचंद्र जी ने इसकी मरम्मत करवाई। इसके चारों ओर पहले बना जंगल था।

इन मंदिरों में से अधिकांश में श्रावण-भूला के अवसर पर विशेष उत्सव मनाया जाता है। सोने-चाँदी के सुसज्जित हिंडोले पड़ते हैं तथा अन्य अनेक प्रकार के साज-सिंगार किये जाते हैं। रास, कीर्तन, कथा-बार्ता, संगीत आदि से ये मंदिर समय-समय पर मुखरित होते रहते हैं।

मथुरा में शिवजी के भी कई मंदिर हैं, जिनमें ४ प्रधान हैं—उत्तर में गोकर्णेश्वर, दक्षिण में रंगेश्वर, पश्चिम में भूतेश्वर और पूर्व में पित्पलेश्वर। इस प्रकार नगर के चारों ओर शिव के होने से उन्हें 'मथुरा का कोतवाल' कहा जाता है।

अन्य दर्शनीय स्थान

१. कृष्ण-जन्म-भूमि—यह स्थान मथुरा का सबसे पावन स्थान है। यहाँ उस लोक-नायक ने जन्म लिया था जिसका गीतोपदेश विश्व के समस्त तत्त्वज्ञान में सर्वोपरि माना जाता है। इस जन्म-भूमि पर समय-समय पर भारतीय राजाओं और प्रजाओं ने अपार धन ठग्य करके अपने पूज्य केशव[†] की महानता के अनुरूप विशाल मंदिर खड़े किये। ११ वीं शा० में जब महमूद गजनवी मथुरा आया और उसने

[†]वैष्णव धर्म के अभ्युत्थान-काल में मथुरा में केशव के नाम

जन्म-स्थान पर बने हुए मंदिर को देखा तो उसकी आँखें चौंधिया गईं। उसने खुद लिखा है कि “अगर कोई आदमी इस तरह की इमारत बनवाना चाहे तो उसे दस करोड़ दीनार (स्वर्ण-मुद्रा) खर्च करने पड़ेंगे और उसके निर्माण में २०० वर्ष से कम नहीं लगेंगे, चाहे उसमें बहुत ही योग्य और अनुभवी कारीगरों को ही क्यों न लगा दिया जावे।”*

हम पीछे बता चुके हैं कि किस प्रकार जन्म-स्थान पर बने हुए मंदिर बार-बार नष्ट किये गये। इस समय वीरसिंहदेव द्वारा बनवाये गये मन्दिर की केवल दूटी-फूटी चौकी शेष है। इसके सामने १७२ फीट लम्बी और ८६ फीट चौड़ी पक्की कुर्सी पर औरंगज़ेब की बनवाई मस्जिद खड़ी है।

खेद है कि अभी तक जन्म-स्थान के पुनरुद्धार का तथा वहाँ पर एक उपयुक्त स्मारक बनाने का कार्य पूर्ण नहीं हो सका।

२. पोतरा कुंड—यह चौकोर पक्का कुंड जन्म-स्थान के समीप

से श्रीकृष्ण का पूजन प्रधान हो गया। जिस मुहल्ले में जन्म-स्थान है वह अब भी ‘कटरा केशवदेव’ या ‘केशवपुरा’ कहलाता है। केशव के प्रधानदेवत्व का परिचायक निम्नलिखित दोहा मथुरा में बहुत समय से प्रचलित है—

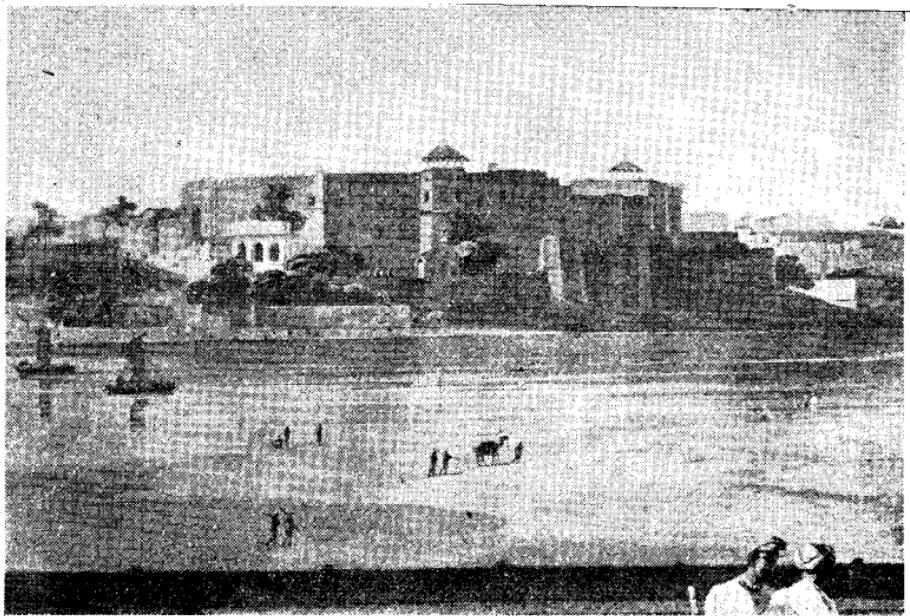
“मथुरा में मँगता बसै, दाता केशवदेव।
बाँभन, बनियाँ, बाँदरा लूटि खान की टेव।”

*ग्राउज़—मथुरा मेम्बायर, पृ० ३२.

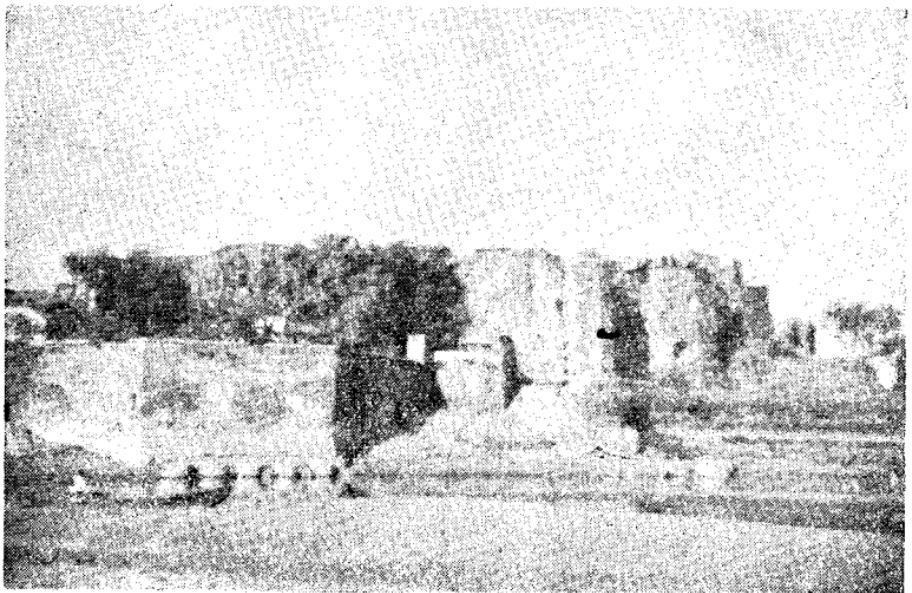
ही है। इसका विस्तार बहुत बड़ा है। कहते हैं कि इस कुंड में पहले बालक कृष्ण के कपड़े धोये गये थे, इसी से इसका नाम 'पोतरा कुंड' पड़ा। १८५० ई० में ग्रालियर राज्य के कामदार ने बहुत धन व्यय करके इसका पुनर्निर्माण कराया। इस कुंड में बाद में नहर से पानी लेने की भी व्यवस्था की गई। अब कुंड की दशा ठीक नहीं है। उसकी कुछ भग्न दीवालों पर अब भी सुन्दर चित्रकारी देखी जा सकती है।

३. 'कंस किला'—यह किला यमुना-तट पर स्वामीघाट से कुछ उत्तर की ओर है। $\frac{1}{2}$ जैसा हम पहले बता चुके हैं, यह अकबर के समकालीन अंवेर के राजा मानसिंह का बनवाया हुआ है। मानसिंह के बाद उनके प्रसिद्ध वंशज सवाई जयसिंह (१६६४-१७४३ ई०) इसमें बहुत दिन तक रहे। उन्होंने इस किले के ऊपर ज्योतिष की वेधशाला बनवाई, जो अब नष्ट हो गई है। १८५७ के स्वतंत्रता-युद्ध के पहले ज्योतिप्रसाद नामक ठेकेदार ने किले की जमीन ले ली थी। जब कुछ इमारतों के निर्माण के लिये सामान की आवश्यकता पड़ी तो उसने किले के पत्थरों आदि को निकलवा कर उन्हें बाहर पहुँचा दिया। इस प्रकार उसने इस इमारत को बड़ी क्षति पहुँचाई। उसके नष्ट करने के लगभग ६० वर्ष पहले डेनियल द्वारा किले का

$\frac{1}{2}$ पानी की टक्करों से इमारत को सुरक्षित रखने के लिये किले के नीचे नदी की ओर पत्थर के मोटे स्तंभ बने हैं। किले का जो भाग नदी की ओर से दिखाई पड़ता है उसे देखने पर पता चलता है कि पत्थर की जुड़ाई का काम पहले कितना पुख्ता होता था।

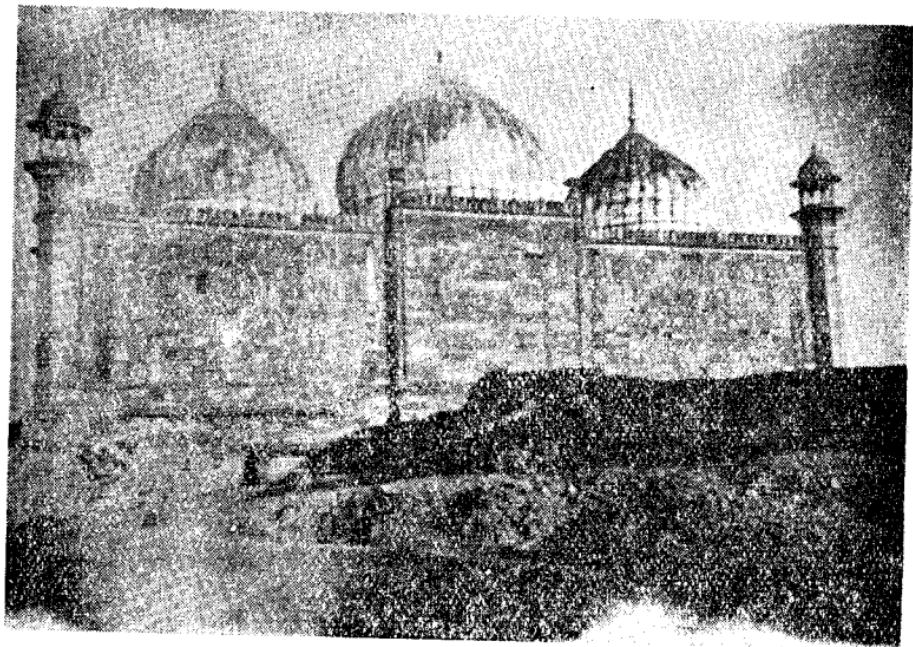
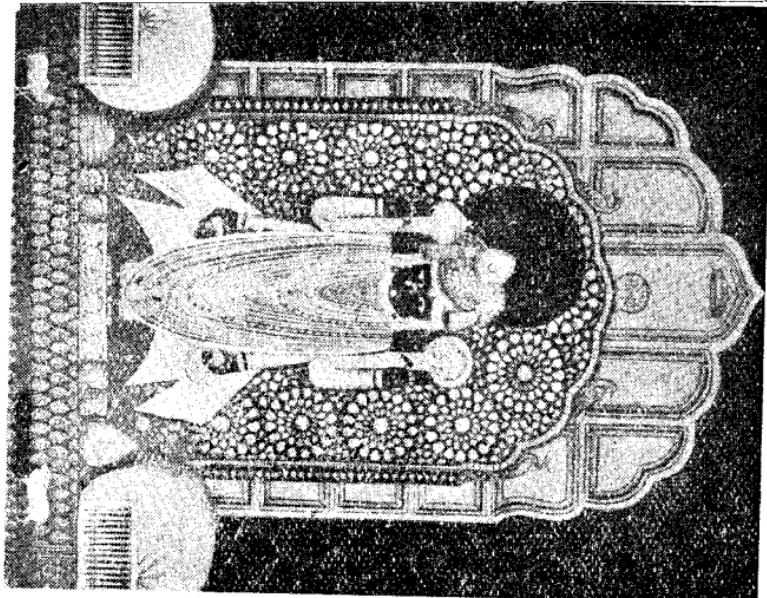


किले का प्राचीन चित्र (कापी रङ्गाट-टामस डेनियल)



किले का वर्तमान दृश्य

भगवान् द्वारकाधीश



श्री कृष्ण जन्मस्थान का वर्तमान रूप

जो चित्र लिया गया है उसमें किले का अधिकांश भाग सुरक्षित अवस्था में प्रदर्शित है। सौभाग्य से अब किले का प्रबन्ध अच्छे हाथों में है और आशा है कि अब इसका शीघ्र आवश्यक जीर्णोद्धार हो सकेगा।

४. सती बुर्ज—यह ५५ फुट ऊँचा चौखंडा बुर्ज विश्रांत घाट के दक्षिण यमुना-तट पर बना है। इस स्थान पर जयपुर के राजा विहारमल की रानी सती हुई थीं। उनके बेटे भगवानदास ने इस घटना की स्मृति में १५७० ई० में यह बुर्ज बनवाया। इसके ऊपर हाथी आदि की साधारण चित्रकारी है। औरंगज़ेब ने इसके ऊपर का शिखर तुड़वा दिया। उसकी जगह १६ बीं शती के प्रारम्भ में एक कलाहीन गुंबद लगवाया गया।

५. शिवताल—यह बड़ा सरोवर भगतसिंह पार्क के बाहर वृन्दावन वाली रेलवे लाइन के परली पार है। इसे १८०७ ई० में बनारस के राजा पटनीमल ने बनवाया था। इसकी बनावट सुन्दर है। किनारे-किनारे की दीवालों पर चित्रकारी भी दर्शनीय है। चारों ओर हरे-भरे वृक्षों से सरोवर की शोभा बहुत बढ़ गई है। यहाँ बलदेव चौबे का प्रसिद्ध अखाड़ा है।

६. जमुना बाग—यह मथुरा के ख्यातनामा सेठों का बाग है और शहर के दक्षिण ओर यमुना-तट पर है। इसमें अनेक प्रकार के लता-वृक्ष हैं। बाग के भीतर द्वारकाधीश मंदिर के निर्माता सेठ पारिखजी की तथा मनीरामजी की याद में दो

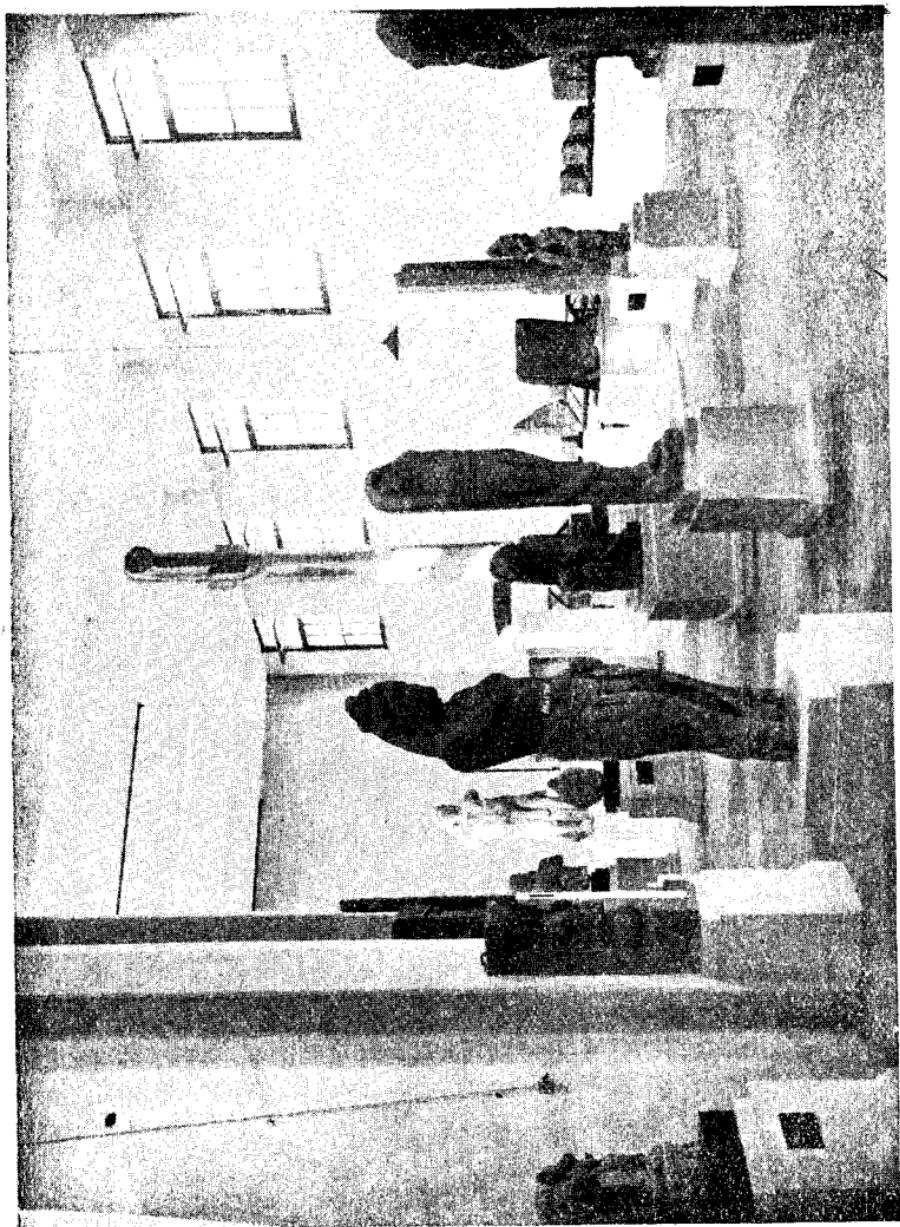
छतरियाँ बनी हैं। दूसरी छतरी, जो १८३७ ई० में बनी, बहुत ही सुन्दर है। इसमें पत्थर का काम नायाब है और प्राचीन उन्नत स्थापत्य कला की याद दिलाता है। बगीचे में ही विश्राम-भवन तथा अतिथिशाला भी है।

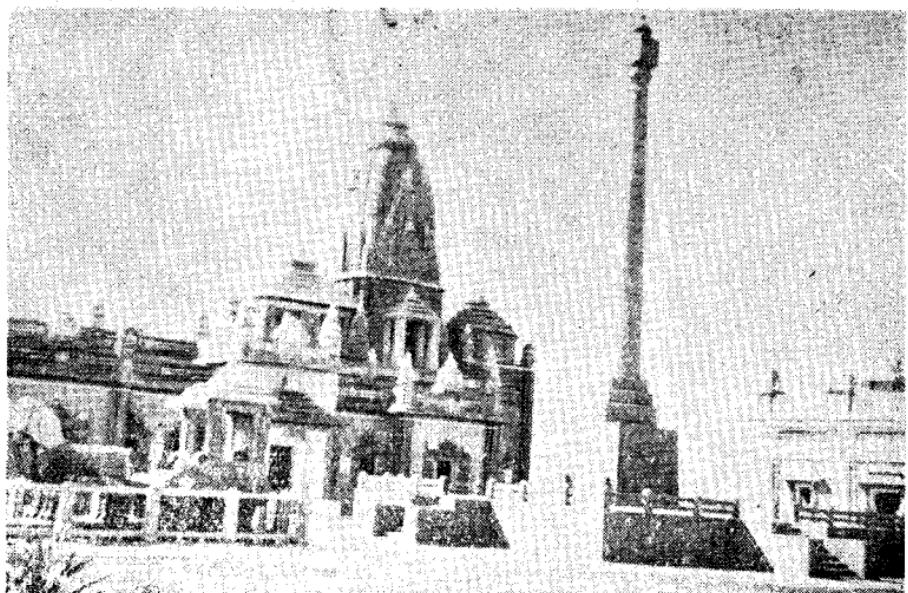
७. पुरातत्त्व संग्रहालय—यह इमारत भगतसिंह पार्क में है। इसमें ब्रज के विभिन्न स्थानों से प्राप्त ७,००० से ऊपर पुरानी मूर्तियाँ आदि संगृहीत हैं, जो लगभग ई० पू० ४०० से लेकर ई० बारहवीं शती तक की हैं। इनका प्रदर्शन बहुत ही सुन्दर ढंग से कालक्रमानुसार किया गया है। मथुरा पधारने वाले प्रत्येक व्यक्ति को अपनी इस गौरवमयी निधि का अवलोकन करना चाहिए।

८. चौरासी—यह स्थान भूतेश्वर के पश्चिम में बाटर वर्क्स के कुछ आगे है। यह जैनियों का बड़ा केन्द्र है। यहाँ एक सुन्दर मन्दिर, आवासगृह, पाठशाला एवं पुस्तकालय है। पुस्तकालय में अनेक बहुमूल्य ग्रंथ हैं। शहर की भड़भड़ाहट से दूर चौरासी का शांत वातावरण प्राचीन काल के विहारों एवं आश्रमों की याद दिलाता है।

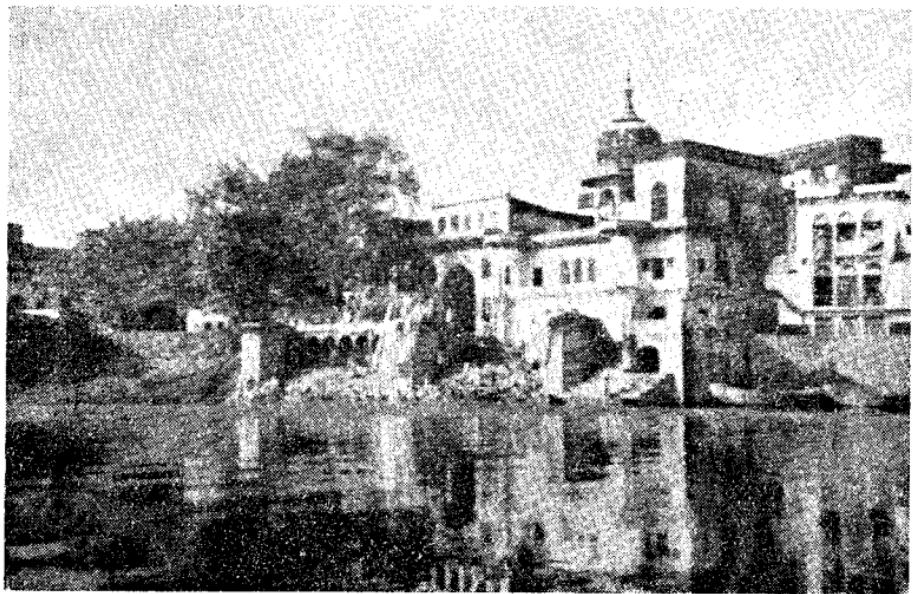
९. गीता मन्दिर—यह मन्दिर मथुरा के बाहर बृन्दावन सड़क पर है और दानबीर ब्रिडला के द्वारा बनवाया गया है। इस मन्दिर में विविध चित्र एवं मूर्ति-रचना के साथ-साथ प्राचीन वाड़मय के चुने हुए उपदेशात्मक वाक्य जगह-जगह खुदे हुए हैं, जो दर्शकों के लिये बड़े लाभप्रद हैं।

תְּמִימָנָה תַּחֲנוּן אֶת־עַמּוֹתֵךְ וְאֶת־עַמּוֹתֵךְ





गीता मन्दिर



स्वामी घाट

मन्दिर की बगल में गीता-स्तम्भ है, जिस पर संपूर्ण गीता
खुदी हुई है। पास में गीता धर्मशाला है, जिसकी सफाई
और अन्य व्यवस्था सराहनीय है।

मुख्य घाट

इस समय मथुरा में मुख्य २४ घाट माने जाते हैं—
१२ विश्रांत के उत्तर में और शेष १२ दक्षिण में।

विश्रांत या विश्राम घाट राहर के लगभग बीचोबीच
में है। * घाट पर यमुना जी का छोटा मन्दिर एवं आस-पास
अन्य अनेक मन्दिर हैं। सायंकाल यहाँ की आरती का दृश्य
बड़ा मनोहर होता है। मुख्य अवसरों पर यहाँ स्नान में सब
घाटों से अधिक भीड़ होती है।

ओढ़छा के स्वनामधन्य राजा वीरसिंहदेव ने विश्रांत
घाट पर ८१ मन स्वर्ण-तुला का दान किया। फिर जयपुर,
रीवाँ और काशी के राजाओं ने भी स्वर्ण-तुला-दान किये।
काशी-नरेश श्री ईश्वरी प्रसाद जी तीन मन सोने से तुले बताये
जाते हैं।

* कृष्ण-कालीन प्राचीन विश्रांत कहाँ था, यह निश्चित रूप
से नहीं बता सकते। हो सकता है कि वह कटरा केशवदेव के समीप
कहीं रहा हो। उस समय यमुना का बहाव जन्म-स्थान के निकट ही
रहा होगा। कुछ लोग प्राचीन विश्रांत असिकुण्डा और स्वामीघाट के
बीच उस स्थान में मानते हैं जहाँ आजकल मखदूम साहब की दर-

उत्तर की ओर के १२ घाट ये हैं—

१. गणेश घाट, २. दशाश्वमेध घाट, ३. सरस्वती संगम घाट,
 ४. चक्रतीर्थ घाट, ५. कृष्णगंगा घाट, ६. सोमतीर्थ या स्वामीघाट (इसे
 वसुदेव घाट भी कहते हैं), ७. धंटाभरन घाट, ८. धारापत्तन घाट,
 ९. बैकुंठ घाट, १०. नवतीर्थ या वराह द्वेष घाट, ११. असिकुंडा घाट,
 १२. मणिकर्णिका घाट ।

दक्षिण की ओर के १२ घाट ये हैं —

१. विश्रांत या विश्राम घाट, २. गुप्ततीर्थ घाट, ३. प्राग् (प्रग्राम)
 घाट, ४. श्याम घाट, ५. राम घाट, ६. कनखल घाट, ७. सूर्य घाट
 ८. ध्रुव घाट, ९. सप्तर्षि घाट, १०. मोक्ष तीर्थ घाट, ११. रावणकोटि
 घाट, १२. बुद्ध घाट ।

धर्मशालाएँ

मथुरा में निम्नलिखित बड़ी धर्मशालाएँ हैं, जिनमें
 यात्रियों के ठहरने की व्यवस्था रहती है —

१. कल्याण सिंह भार्गव की धर्मशाला, २. नारायण
 दास धर्मशाला, ३. माहेश्वरी धर्मशाला — ये तीनों वृन्दावन
 दर्वाजे पर हैं; ४. हरदयाल विष्णुदयाल कलकत्ता वालों की

गाह है। ये 'मखदूम शाह बिलायत' हेरात के रहने वाले थे और
 निजामुद्दीन औलिया के शागिर्दों में बताये जाते हैं। इनकी मृत्यु
 मथुरा में हुई। १४ वीं शती के प्रारंभ में संभवतः अलाउद्दीन के भाई
 उलगङ्गां ने, जिसके नाम का एक लेख यहाँ मिला है, वर्तमान 'मखदूम
 साहब' पर स्थित हिंदू मन्दिर को तुड़वा कर वहाँ इस फ़कीर की स्मृति
 में एक इमारत बनवाई। उसके बाद १८७५ ई० में वहाँ वर्तमान नई
 मस्जिद का निर्माण हुआ।

(नया बजार) ५. हरमुखराय दुलीचंद, हाथरस की (स्वामी घाट), ६. राजा निलोई की (बंगाली घाट), ७. अहमदाबाद वाले दामोदर तापीदास की (असिकुंडा), ८. तेजपाल गे कुलदांस की (मारु गली), ९. आगरे वाली (बंगाली घाट) १०. मलानी धर्मशाला (प्राग घाट), ११. अबागढ़ राजा की (पुल के पास), १२. अहमदाबाद वालों की (छत्ता बाजार) १३. जवलपुर की (सतघड़ा), १४. शेरगढ़ वाले की, (सतघड़ा) १५. करमसी दाम जी की (विश्राम घाट), १६. सागर वाले सेठ की (किले के पास), १७. कुंजलाल विशेष्वर दास बीकानेर वाले की (रामघाट), १८. नैनसी वाली (रामघाट) १९. गरीब दास भाटिया की (जिला अस्पताल के सामने), २०. लझोमल की (जंक्शन स्टेशन से लगभग ३ किलोग्राम शहर की ओर) ।

इनके अतिरिक्त यहाँ अन्य अनेक धर्मशालाएँ हैं । कुछ ऐसी हैं जिनमें ठहरने के लिये पहले मालिकों की स्वीकृति लेनी अनिवार्य रहती है ।

मथुरा के निवासी तथा उनके प्रधान उद्यम

मथुरा में इस समय छोटे-बड़े सब मिलाकर सौ से कुछ ऊपर मुहल्ले हैं । इनके नाम कब-कब और कैसे पड़े, इसकी कथा बहुत लम्बी है । अधिकांश मुहल्लों के नाम तीन सौ वर्ष से पहले के नहीं हैं । परंतु कुछ नाम निस्संदेह बहुत प्राचीन व्यक्तियों के परिचायक हैं, जिनके आधार पर ही उन मुहल्लों का नामकरण हुआ होगा । केशवपुरा या मल्लपुरा, कंसखार,

कृष्ण गंगा, अजुनपुरा, रामजी द्वारा, ध्रुव टीला, बलि टीला आदि कुछ ऐसे ही नाम हैं।

मथुरा नगर की हाल में कोई जन-गणना नहीं की गई। पर अनुमानतः इस समय यहाँ की कुल जन-संख्या एक लाख से कुछ ऊपर होगी। यहाँ के निवासियों में हिंदुओं की संख्या सबसे अधिक है। सिक्ख, मुसलमान और क्रिश्चियन लोगों की भी अच्छी संख्या है। थोड़े से जैनी भी रहते हैं। प्राचीन मथुरा नगर दोन्हों का एक बड़ा केन्द्र था, पर अब यहाँ बौद्ध नहीं हैं। १९४७ में और उसके बाद पश्चिमी पाकिस्तान से बड़ी संख्या में हिन्दू और सिक्ख शरणार्थी मथुरा आये और यहाँ बस गये।

हिंदुओं में यहाँ सभी वर्णों के लोग हैं। माथुर चतुर्वेदी ब्राह्मणों (चौबों) की संख्या बहुत बड़ी है। यही लोग मथुरा के प्रधान तीर्थ-पुरोहित हैं। चारों प्रधान वैष्णव संप्रदायों—बल्लभ, निवार्क, रोमानुज और मध्व—के मानने वाले मथुरा में मिलते हैं। कुछ उपसंप्रदायों के मानने वाले भी हैं। चतुर्वेदी ब्राह्मणों के कई रीति-रिवाज अन्य लोगों से पृथक हैं, विशेषकर विवाह सम्बन्धी रीतियाँ। चौबों का भोजन भी विख्यात है। पर अब वर्तमान परिस्थितियों के कारण तथाकथित भीमों और कुंभ-कर्णों की संख्या दिन पर दिन क्षीण होती जारही है।

मथुरा में पहले अनेक उद्योग-धंधे थे। यहाँ कागज बनाने का काम बहुत होता था और अच्छा कागज तैयार होता था। पर अब यह व्यवसाय बंद हो गया है। यहाँ पर निर्मित

पीतल, ताँबे और कांसे की मूर्तियाँ और दर्तन प्रसिद्ध थे। अब भी पीतल और ताँबे के लोटे और कहुए अच्छे बनते हैं। मथुरा में डोरी और निवाड़ बहुत अच्छे दर्जे की तैयार होती है। इसके अतिरिक्त रामलीला और कृष्णलीला का साज-शृङ्खार तथा लकड़ी और मिट्टी के खिलौने भी कलापूर्ण बनते हैं। मथुरा की कपड़े की छपाई तथा यहाँ के बने पेड़े-खुरचन बहुत प्रसिद्ध हैं। यहाँ के निवासी नौकरी की अपेक्षा व्यवसाय अधिक पसंद करते हैं। बाहर से यहाँ आये हुए शरणार्थियों में अधिकांश कोई न कोई व्यवसाय कर रहे हैं।

प्रमुख उत्सव तथा मेले

मथुरा नगर उत्सवों के लिये प्रसिद्ध है। यहाँ हर महीने विविध उत्सव हुआ करते हैं। उनमें से मुख्य नीचे दिये जाते हैं—

१. यमुना-षष्ठी—चैत सुदी छठ। विश्रांत घाट पर यमुना-महोत्सव मनाया जाता है।

२. दुर्गा अष्टमी—चैत सुदी अष्टमी। महाविद्या मन्दिर पर मेला लगता है।

३. राम नवमी—चैत सुदी नवमी। रामजी द्वार पर राम मंदिर के दर्शन और उत्सव।

४. नृसिंह लीला—बैशाख सुदी चौदस। सतघड़ा, गोलपाड़ा मानिक चौक, कुआ वाली गली और द्वारकाधीश मंदिर में नृसिंह लीला मनाई जाती है।

५. वन-विहार—बैशाख की पूर्णिमा। रात में नगर की परिक्रमा की जाती है।

६. दशहरा—जेठ सुदी दशमी। दशाश्वमेघ घाट में विशेष स्नान होता है।

७. जल-यात्रा—जेठ पूर्णिमा। यमुना जी से जल लाकर लोग अपने इष्ट देवों का अभिषेक करते हैं।

८. रथ-यात्रा—आषाढ़ सुदी दुइज। द्वारकाधीश, दाऊजी और मदनमोहन जी के मन्दिरों में विशेष उत्सव होता है।

९. आषाढ़ी परिक्रमा—आषाढ़ सुदी एकादशी। इस दिन लोग तड़के से ही परिक्रमा प्रारम्भ करते हैं। कुछ लोग मथुरा के अतिरिक्त वृन्दावन तथा गरुड़ गोविंद की भी परिक्रमा लगाते हैं।

१०. व्यास-पूनो—आषाढ़ी पूर्णिमा। गुरु की पूजा होती है। शाम को दंगल होते हैं।

११. हरियाली तीज—सावन सुदी तीज। इस दिन मथुरा में सब जगह उत्सव मनाया जाता है। भूतेश्वर महादेव के पास मल्ल लोग कुशती लड़ते हैं।

१२. पंच तीरथ—सावन सुदी पंचमी से यह मेला प्रारम्भ होता है। पहले दिन मधुवन यात्रा का, दूसरे दिन शांतनु कुंड का, तीसरे दिन गोकर्णेश्वर का, चौथे दिन गरुड़ गोविंद का और पांचवें दिन ब्रह्मकुंड (वृन्दावन में) का मेला होता है।

१३. रक्ता बंधन—सावन की पूर्णिमा। इस दिन राखी बंधन का उत्सव होता है तथा विभिन्न स्थानों में दंगल होते हैं।

१४. जन्माष्टमी—मादौं बढ़ी अष्टमी। लोग आधी रात तक ब्रत रखते हैं। उसके बाद कृष्ण-जन्मोत्सव मनाया जाता है। नगर के

प्राथः सभी मन्दिर बहुत सजाये जाते हैं। द्वारकाधीश का शूंगार सबसे अधिक सुन्दर होता है।

१५. राधा अष्टमी—भादौं सुरो अष्टमी। इस दिन राधिका जी का जन्मोत्सव मनाया जाता है।

१६. दान लीला—भादौं सुदी एकादशी। इस दिन मधुवन, तालवन और कुमुदवन की विशेष परिक्रमा की जाती है। इसी दिन गोसाइयों की बन-यात्रा भी उठती है।

१७. अनन्त चौदस—भादौं सुदी चौदस। बलदाऊ जी की विशेष पूजा होती है। पहले इस दिन यमुना में अच्छी तैराकी हुआ करती थी।

१८. दशहरा—कुआर सुदी अष्टमी से द्वादशी तक। महाविद्या के पास रामलीला मैदान में मेघनाद-लीला, कुम्भर्णी लीला, रावणवध, भरतमिलाप तथा राजगढ़ी की लीला क्रमशः एक-एक दिन के बाद दिखाई जाती हैं।

१९. अन्नकूट—कातिक सुदी परेवा। द्वारकाधीश में छप्पन प्रकार के भोग तैयार किये जाते हैं। अन्य कई मन्दिरों में भी उत्सव मनाया जाता है।

२०. यमद्वितीया—कातिक सुदी दुइज। मधुरा में इस दिन सबसे बड़ा स्नान होता है और कई लाख आदमी इकट्ठे होते हैं। स्नान के उपरांत मन्दिरों के दर्शन किये जाते हैं।

२१. धोबी मारन लीला—कातिक सुदी सप्तमी। यह लीला वृन्दावन दरवाजे होती है। कृष्ण द्वारा कंस के धोबी का वध दिखाया जाता है।

२२. गोचारन—कातिक सुदी अष्टमी। गोपाल बाग में मेला लगता है, जिसमें रंग-बिरंगी सुसज्जित गौवें लाई जाती हैं।

२३. अक्षय नवमी—कातिक सुदी नवमी। बहुत बड़े जन-समूह द्वारा नगर की परिक्रमा लगाई जाती है।

२४. कंस-वध मेला—कातिक सुदी दशमी। रंगेश्वर महादेव के पास 'कंस टीले' पर हजारों आदमियों की भीड़ इकट्ठी होती है। चौबे लोग विविध वस्त्रभूषणों से सजकर तथा हाथ में लाठी-डंडे लेकर आते हैं और टीले के ऊपर कागज की बनी हुई विशाल-काश वंस-मूर्ति का मार गिराते हैं। फिर सब लोग विश्रांत नाट लौटते हैं।

२५. देवोत्थानी एकादशी—कातिक सुदी एकादशी। मथुरा नगर की परिक्रमा सहस्रों छी-पुस्रों द्वारा लगाई जाती है।

२६. होली—फागुन सुदी एकादशी से पूर्णिमा तक। वैसे तो होली का उत्सव यहाँ एक सप्ताह से अधिक मनाया जाता है पर पाँच दिन अधिक धूम-धाम रहती है। बगीचे और मन्दिर सजाये जाते हैं। नगर में अनेक प्रकार के लोक गीतों और लोक नृत्यों की बहार रहती है।

२७. उजली चौपर्वी—चैत बढ़ी परेवा। धर्तमान केशवदेव मन्दिर में मेला लगता है।

२८. फूलडोल—चैत बढ़ी पंचमी। बगीचियों में फूलडोल का उत्सव विशेष रूप से मनाया जाता है। इसमें संगीत की प्रधानता रहती है।

शिक्षा की दशा

वर्तमान मथुरा में शिक्षा की अच्छी उन्नति हुई है। इस समय यहाँ एक डिग्री कालेज (किशोरी रमण)*, दो

* हाल में इस कालेज में एल० टी० की शिक्षा का भी प्रबंध हो गया है। श्री द्वारकानाथ भार्गव तथा श्री रामचन्द्र भार्गव के योग्य संचालन में तथा उनके प्रयत्नों के फलस्वरूप किशोरीरमण कालेज मथुरा नगर का प्रमुख विद्यालय बन गया है। इसमें शीघ्र ही पोस्ट ग्रेजुएट शिक्षा की भी व्यवस्था होने जा रही है।

इंटर कालेज (चंपा अग्रवाल तथा किरोरी रमण गल्स कालेज) तथा चार हायर सेकेंडरी स्कूल (गर्वनमेंट, पोहार, क्लैंसी और जवाहर विद्यालय) हैं। किरोरी रमण ट्रस्ट की ओर से एक महिला शिल्प विद्यालय है, जिसमें स्त्रियों के लिये दस्तकारी की शिक्षा का प्रबन्ध है। हाल में उत्तर प्रदेशीय सरकार ने मथुरा में कलंकटरी कचहरी के आगे प्रांतीय पशु-पालन एवं पशु-विज्ञान विद्यालय खाला है, जो इस नगर के लिये एक गौरव की बात है। इसमें पशु-विज्ञान संबंधी उच्च शिक्षा (शास्त्रीय एवं व्यावहारिक दोनों) दी जाती है। मथुरा नगर के बाहर गीता मंदिर के समीप राजा महेंद्रप्रताप द्वारा संस्थापित प्रेम महाविद्यालय आ गया है। इसमें इंजीनियरिंग के विविध विषयों की शिक्षा दी जाती है।

इन शिक्षालयों के अतिरिक्त नगर में म्युनिसिपल बोर्ड के तथा बोर्ड से सहायता ग्राम कुल लगभग ४० छोटे-बड़े स्कूल चलते हैं, जिनमें बेसिक तथा मिडिल की शिक्षा दी जाती है। लड़कियों के लिये अग्रवाल कन्या विद्यालय आदि कुछ अलग स्कूल भी हैं।

नगर में संस्कृत के भी कई विद्यालय हैं। इनमें सबसे बड़ा भगतसिंह पार्क के सामने माथुर चतुर्वेद विद्यालय है, जिसमें आचार्य तक की शिक्षा योग्य विद्वानों द्वारा दी जाती है। इसके अतिरिक्त यहाँ द्वारकाधीश के मंदिर में, कुशक में, नारायण दास धर्मशाला में तथा गोविंद देव आदि मंदिरों में भी संस्कृत पाठशालाएँ हैं।

मथुरा के शिक्षार्थियों की बड़ी संख्या को देखते हुए हम

कह सकते हैं कि यह नगर शिक्षा-प्रसार की दृष्टि से उत्तर प्रदेश के प्रथम श्रेणी वाले नगरों में है। यहाँ के विद्यार्थियों के उच्च मानसिक एवं सांस्कृतिक स्तर का पता उन विविध प्रतियोगिताओं एवं उत्सवों को देखने से चलता है जो समय-समय पर शिक्षा-संस्थाओं या स्वयं विद्यार्थियों द्वारा किये जाते हैं।

पुस्तकालय—विभिन्न शिक्षालयों से संबंधित पुस्तकालयों के अलावा मथुरा में निम्नलिखित सार्वजनिक पुस्तकालय हैं—

१—विद्यासागर वैदिक पुस्तकालय* (गांधी पार्क),
 २—सुख संचारक क० पु० (छत्ता बाजार), ३—देशबन्धु (चौक बाजार), ४—जुबली (भगतसिंह पार्क), ५—हिन्दी साहित्य परिषद् (असिकुण्डा बाजार), ६—सरस्वती (सदर), ७—आजाद (सदर), ८—आर्य समाज, ९—विद्विलास (स्वामीघाट)।

वर्तमान साहित्यिक प्रगति

(क) साहित्यिक संस्थाएँ—१. हिन्दी साहित्य परिषद्—इस परिषद् का जन्म अब से लगभग २० वर्ष पूर्व हुआ था। इसकी अवधानता में ब्रज के ग्राम-गीतों का संकलन कराया

* यह शहर का सबसे बड़ा पुस्तकालय है और संस्थापक वैदिक जी की सच्ची लगन का फल है। इसमें लगभग २७,००० पुस्तकें हैं। अब नगर के कुछ गण्यमान व्यक्तियों के द्वारा इसकी व्यवस्था ठीक की जा रही है।

गया, और एक पुस्तकालय एवं वाचनालय की व्यवस्था की गई। परिषद् ने कुछ समय बाद ब्रज साहित्य मण्डल की स्थापना में योग दिया।

२. ब्रज साहित्य मण्डल—इसकी स्थापना १९४०ई० में हुई। अब यह अखिल भारतीय संस्था है। इसे प्रारम्भ से ही सर्वश्री बनारसीदास चतुर्वेदी, वासुदेवशरण अग्रवाल, श्री नारायण चतुर्वेदी, गुलाबराय, सत्येन्द्र, रामप्रसाद त्रिपाठी, श्रीकृष्णदत्त पालीवाल, वियोगी हरि आदि लघ्वप्रतिष्ठ विद्वानों का सक्रिय सहयोग प्राप्त रहा है। मण्डल के वर्तमान सभापति हिन्दी के कर्मठ साहित्यिक श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' हैं। 'मण्डल' ने अब तक कई छोटी पुस्तकों के अतिरिक्त 'ब्रज की लोक कहानियाँ' तथा 'ब्रज लोक संस्कृति'—ये दो महत्त्वपूर्ण ग्रंथ प्रकाशित किये हैं। 'मण्डल' के तत्वावधान में 'ब्रज का इतिहास' तथा 'सेठ कन्हैयालाल पोद्दार अभिनन्दन ग्रंथ' तैयार किया जा रहा है। 'मण्डल' के मुख्यपत्र 'ब्रज भारती' में ब्रज भाषा, साहित्य एवं इतिहास के संबंध में अध्ययनपूर्ण लेख प्रकाशित होते हैं। यह संस्था ब्रज के विभिन्न स्थानों में केंद्र स्थापित करने तथा प्राचीन ग्रन्थों की शोधका महत्त्वपूर्ण कार्य भी कर रही है। समय-समय पर 'मण्डल' की मनोरंजक एवं उपादेय साहित्यिक गोष्टियाँ भी हुआ करती हैं।

इन संस्थाओं के अतिरिक्त मथुरा में गोवर्धनलाल हिंदी विद्यापीठ आदि अन्य कई संस्थाएँ हैं जो हिन्दी के प्रचार का कार्य करती हैं।

(ख) पत्र-पत्रिकायें—मथुरा से निम्नलिखित पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन होता है—

ब्रज भारती (त्रैमां, सं० श्री विष्णुगी हरि), बल्लभीयसुधा (त्रैमां, सं० श्री द्वारिकादास परीख), जनसेवक (मासिक, सं० श्री श्यामलाल अप्रवाल), नया संसार (साप्तां, सं० श्री शिवशङ्कर उपाध्याय), जनार्दन (साप्तां, सं० ज्यो० राधेश्याम द्विवेदी), देवदूत (सा०, सं० श्री दाऊदयाल 'ब्रजेश'), मजदूर (सा०, सं० श्री कृष्णचन्द्र पाठक), ब्रजवासी (सा०, सं० श्री हकीम ब्रजलाल वर्मन) ।

(ग) प्रमुख साहित्यिक—सौभाग्य से मथुरा में अब भी अनेक साहित्य-सेवी हैं। उनमें से प्रमुख साहित्य-कारों का संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है—

सेठ कन्हैयालाल पोद्दार—सेठ जी हिंदी के यशस्वी लेखक हैं। ७८ वर्ष की आयु में भी उनकी साहित्यिक अभिरुचि नवीन है। रस और अलंकार शास्त्र के सेठ जी धुरंधर विद्वान् हैं। आपके प्रकाशित ग्रंथ ये हैं—‘अलंकार प्रकाश’, ‘हिंदी मेघदूत चिमर्श’ (मेघदूत का समश्लोकी अनुवाद), ‘गंगा लहरी’ (हिंदी अनुवाद), ‘पंचगीत’ (भागवत के पाँच मुख्य गीतों का समश्लोकी अनुवाद), ‘काव्य कल्पद्रुम’ (बाद में यह दो भागों—रस मंजरी और अलंकारी मंजरी—में छपा), ‘संक्षिप्त अलंकार मंजरी’ और ‘सस्कृत साहित्य का इतिहास’ (दो भागों में)। उनके आलोचनात्मक निबंधों का संग्रह ‘साहित्य-

समीक्षा' नाम से छप रहा है। उपर्युक्त ग्रंथों में से कई साहित्य रत्न तथा विशारद आदि परीक्षाओं के कोर्स में हैं। हाल में हिंदी साहित्य सम्मेलन ने सेठ जी को 'साहित्य वाचस्पति' उपाधि द्वारा सम्मानित किया है। ब्रज साहित्य मंडल बड़े समारोह के साथ आपकी हीरक जयंती मना चुका है।

पं० जवाहर लाल चतुर्वेदी—चतुर्वेदी जी ब्रज भाषा साहित्य के मान्य पंडित एवं मर्मज्ञ हैं। आपकी स्वतंत्र रचनाएँ 'आँख और कविगण', 'भक्त और भगवान्' तथा संपादित ग्रन्थ 'नंददास ग्रंथावली', 'दानलीला' (हरिराय कृत), 'भागवत मूल और अनुवाद' तथा 'शृङ्गार लतिका सौरभ' (द्विजदेव कृत) प्रकाशित हो चुके हैं। अन्य ग्रंथ जिनका चतुर्वेदी जी संपादन कर चुके या 'कर रहे हैं ये हैं—नंददास का अमरगीत', 'नंददास पदावली', 'सूरसागर', 'परमानंद सागर', 'पुष्टिमार्गीय ग्रंथरत्नकोश' तथा 'ब्रजभाषा ग्रंथ कोश'। पिछले दोनों ग्रंथों में मुद्रित एवं अमुद्रित सभी पुस्तकों का संक्षिप्त परिचय रहेगा। तैयार होने पर ये हिंदी साहित्य के लिये अमूल्य ग्रंथ होंगे।

श्री प्रभुदयाल मीतल—मीतल जी की प्रारंभिक रचनाएँ 'राष्ट्रीय आंदोलन', 'मेवाड़ की अमर गाथाएँ' तथा 'राजपूती कथाएँ' हैं। आपके ब्रजभाषा साहित्य संबंधी तीन महत्वपूर्ण ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं—'ब्रजभाषा साहित्य का नायिका भेद', 'अष्टछाप-परिचय' तथा 'सूरनिर्णय' (द्वारिकादास जी परीख के साथ)। 'ब्रज भाषा साहित्य का ऋतु-सौंदर्य' नामक पुस्तक प्रेस में है।

श्री राजवहादुर श्रीवास्तव—आपने धर्म और दर्शन संबंधी कई ग्रंथ लिखे हैं, जिनमें कुछ प्रकाशित भी हो चुके हैं।

श्री पुरुषोत्तम दास 'सैयाँ'—इनकी कंठी-माला की छोटी दुकान बहुत समय से मथुरा का एक साहित्यिक अखाड़ा रही है। 'सैयाँ' जी रीतिकालीन परिपाटी के कवि हैं। आपकी रचना का एक उदाहरण नीचे दिया जाता है—

कंकन करन, कटि किंकिनी विराज रही,
धीरता विराज रही मन की उमंग मैं ।

‘उत्तम’ निहार बेनो सोनी मृगनोनी लज्जी,
जम की निसोनी बान सोहत निखंग मैं ॥

बीरी चारु हार तापै बाँध रखी तरबार,
रथ के अगार बैठो केसरी उचंग मैं ।

हीजरा के ढंग मैं सुबीरता के रंग रगौ,
उत्तर के संग जात पारथ यों जंग मैं ॥

गोविंद जी—आप सुकवि नवनीत जी के पुत्र हैं। अपने वंश की साहित्यिक परंपरा को आपने जीवित रखा है। इनकी कविताओं का एक संप्रह 'ब्रजबानी' नाम से छप चुका है। 'आँख' के ऊपर लिखी हुई इनकी सरस कविता का एक उदाहरण देखिए—

अनजान मैं आपुही आन मिली, श्री उदारता-वारिधि मैं गई बोर ।
‘कवि गोविंद’ बातें करें है अबैन, श्री सैनन ही रस चै गई घोर ॥
छलबै मैं छटी छरछंद-भरी, छवि छाकी छटान कै छूनै गई छोर ।
बसिकै मेरी आँखेन मैं तेरी आँख, मेरां मन मानिक लै गई चोर ॥

श्री राम लला—‘लला’ जी उन लुटाने वालों में हैं जो बटोरना नहीं जानते। इनके रचित छँदों की संख्या बहुत है, पर उनका कोई संग्रह प्रकाशित या अप्रकाशित नहीं है। ये गीतिकालीन उस काव्य-धारा के अनुयायी हैं जिसकी सरसता एवं शब्द-सौंदर्य श्रोताओं को मुग्ध ही नहीं आत्म-विभोर कर देते हैं। ‘लला’ की कविता के दो नमूने नीचे दिये जाते हैं—

राजन कौं राज महाराजन कौं महाराज,

जदुराज राज की रिवाज निधि बंदौं मैं।

‘लला कवि’ द्वारिका पुरी की प्रतिभा की पुंज,

सदन सनेह की विभाज निधि बंदौं मैं॥

ताज निधि बंदौं सुख साज निधि बंदौं गाज,

निज जन काज की निवाज निधि बंदौं मैं।

कौरव समाज बाज राखी द्रौपदी की लाज,

ब्रजराज प्यारे की विराज निधि बंदौं मैं॥



कृष्ण और राधिका के दलों के दीच होली का एक रस-रंग देखिए—

उत में गोविंद के सखान कौं अनूठौं रंग,

इत अलि-बृंदनि की जुरनि अनूठी है।

‘लला कवि’ ललकि सपच्छ पिचकारिन की

लच्छना उतै है, इतै दुरनि अनूठी है॥

उतै रंग-रोरिन कौं गोरिन पैं गेरैं, इतै

कलित कमोरिन की पुरनि अनूठी है।

लुरनि अनूठी, रसकुरनि अनूठी ऊठी,

उतै उठै मूठी इतै मुरनि अनूठी है॥

अन्य कवियों में सर्वश्री भगवानदत्त चतुर्वेदी गोपालप्रसाद ‘यास’, प्रीतम ‘चच्चन’ रामस्वरूप ‘रसिकेन्दु’ गोविंदराम पाठक, दीनानाथ सुमनेश’ और गोपालदत्त शर्मा के नाम उल्लेखनीय हैं। ये सब अधिकतर खड़ी बोली के कवि हैं। व्यासजी हास्य रस के प्रमुख कवियों में हैं। उनके कई छोटे काव्य-संग्रह—‘उनका पाकिस्तान’, ‘अजी सुनो’ आदि—छप चुके हैं। ‘रसिकेन्दु’ जी का ‘साँघरी’ नामक खंडकाव्य प्रकाशित हुआ है। ‘चच्चन’ जी तथा गोपालदत्त जी ने ब्रजभाषा में भी कुछ सुन्दर रचनाएँ की हैं।

उपसंहार

वर्तमान मथुरा उन्नतिशील नगर है। आधुनिक आवश्यकताओं के अनुकूल नगर के विकास के लिये अनेक योजनाएँ कार्यरूप में परिणत की जा रही हैं। कुछ समय से यहाँ एक अच्छे बड़े पार्क का अभाव बहुत खटक रहा था। यद्यपि डैपियर पार्क बहुत पहले अस्तित्व में आ चुका था पर ठीक व्यवस्था न होने के कारण वह केवल नाम के लिये पार्क था। मथुरा झुनिसिपल बोर्ड के वर्तमान चेयरमैन डा० श्रीनाथ भार्गव के सतत उद्योग के परिणामस्वरूप अब यह एक हरे-भरे सुन्दर पार्क के रूप में हो गया है। डा० भार्गव ने मथुरा की अनेक सड़कों को भी नवीन रूप दिया है। बसों, लारियों तथा टाँगों के अड्डे उपयुक्त स्थानों में बनाये गये हैं और शहर की सफाई तथा स्वास्थ्य-उन्नति की ओर विशेष ध्यान दिया जाने लगा है।

जहाँ डा० भार्गव नगर की वाह्य काया को सुधारने में संलग्न हैं वहाँ मथुरा के ज़िलाधीश श्री जयकरन नाथ उग्रा ने नगर की साहित्यिक एवं सांस्कृतिक चेतना को प्रबुद्ध करने में योग दिया है। इनकी-जैसी बहुमुखी प्रतिभा

के कलेक्टर बहुत थोड़े हुए हैं। इस नगर के इतिहास में इन दोनों महानुभावों का नाम इनके अनेक जन-हितकारी कार्यों के कारण चिरस्मरणीय रहेगा।

आधुनिक मथुरा शहर में प्रायः वे सभी अच्छाइयाँ और बुराइयाँ मौजूद हैं जो पाश्चात्य सभ्यता के द्वारा इस देश को पिछली दो शताब्दियों में प्रदान की गई हैं। आज मथुरा में भी सरसता एवं सुकुमारता के स्थान पर नीरसता और कठोरता अधिक दिखाई पड़ती है। वर्तमान परिस्थितियों में ऐसा स्वाभाविक ही है। यदि 'निराला' -जैसे भावुक कवि आज की मथुरा को देखकर [निराश हो] यों कह उठे—

कहाँ छलकते अब वैसे ही ब्रज-नागरियों के गागर ?

कहाँ भीगते अब वैसे ही बाहु, उरोज, अधर, अंबर ?'

तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। वर्तमान वैज्ञानिक युग में पुरानी कितनी ही सरस एवं सरल बातें धीरे-धीरे नष्ट होती जा रही हैं ! परंतु तो भी आज की मथुरा सहृदयों के लिये असुन्दर और नीरस नहीं है। जब तक लोगों में श्रीकृष्ण के प्रति तथा उनकी मधुर लीलाओं के प्रति श्रद्धा है, जब तक ब्रज की परंपरागत लोक-वार्ता में जनता की कुछ भी रुचि शेष है तब तक मथुरा नगर लाखों नहीं, कोटि-कोटि मानव-हृदयों का आकर्षण-केन्द्र बना रहेगा ! यहाँ की पुनीत रज में, यहाँ की 'जमुना मैया में' यहाँ-की रसमयी भाषा में और यहाँ के मन्दिरों, घाटों आदि में होने वाले रास तथा अन्य मनोरम उत्सवों में वह शाश्वत सौंदर्य है जो काल के द्वारा नष्ट नहीं किया जा सकता ।

मथुरा नगर से ब्रज के स्थानों की दूरी तथा पहुँचने के साधन

[रावल को छोड़ कर मथुरा से शेष सब स्थानों तक पक्की सड़कें गई हैं]

स्थान	दूरी मीलों में	पहुँचने के साधन
कामवन	३६	मथुरा से मोटर द्वारा गोवर्धन और डीग होकर।
गरुड़गोविन्द	४	मोटर या ताँगा द्वारा।
गोकुल	६	मोटर या ताँगा द्वारा।
गोवर्धन	१४	मोटर या ताँगा द्वारा।
नन्दगाँव	३३	मथुरा से रेल या मोटर द्वारा कोसी तक और कोसी से मोटर या ताँगा द्वारा नन्दगाँव तक।
वरसाना	३७	नन्दगाँव से मोटर या ताँगा द्वारा।
बलदेव(दाऊजी)	१३	मोटर या ताँगा द्वारा।
महावन	७	मोटर या ताँगा द्वारा।
राधाकुण्ड	१६	गोवर्धन से मोटर या ताँगा द्वारा।
रावल	४	मोटर या ताँगा द्वारा।
बृन्दावन	६	रेल, मोटर या ताँगा द्वारा।

सहायक ग्रंथ-सूची

वैदिक ग्रंथ—ऋग्वेद, यजुर्वेद, शतपथ ब्राह्मण, वंश ब्राह्मण, वृहदारण्यक तथा छांदोग्य उपनिषद् ।

पुराण ग्रंथ—हरिवंश, विष्णु, मत्स्य, भागवत, वराह, पद्म तथा ब्रह्मवैवर्त ।

वाल्मीकीय रामायण तथा महाभारत ।

एफ० एस० ग्राउज़—मथुरा, ए डिस्ट्रिक्ट मेघायर द्वितीय संस्करण, इलाहाबाद, १८८० ।

डी० एल० ड्रैक च्लाकमैन—डिस्ट्रिक्ट गजेरियर ऑफ मथुरा, इलाहाबाद, १८९१ ई० ।

ए० प्रद्युरर—दि मानुमेटल एंटिकिवटीज एंड इंस्क्रिप्शंस इन दि नार्थ वेस्टर्न प्राविंसेज एंड अवध, इलाहाबाद, १८८१ ।

बी० ए० स्मिथ—दि जैन स्तूप एंड अदर एंटिकिवटीज ऑफ मथुरा, इलाहाबाद, १८०१ ।

एफ० डब्ल्यू० पार्जिटर—ऐश्यंट इंडियन हिस्टारिकल ट्रैडीशन, लंदन, १८२२ ।

“ ” ” —**दि पुराण टेक्स्ट ऑफ दि डाइनेस्टीज ऑफ कलि एज, आक्सफोर्ड**, १८१३ ।

रमाशंकर त्रिपाठी—हिस्ट्री ऑफ ऐश्यंट इंडिया, बनारस, १८४२ ।

जयचंद्र विद्यालंकार—भारतीय इतिहास की रूपरेखा, जिल्द १ इलाहाबाद, १८३३ ।

मजुमदार और अल्तेकर—ए न्यू हिस्ट्री ऑफ इंडियन पीपुल, जिल्द ६, लाहौर, १८४६ ।

जदुनाथ सरकार—फाल ऑफ दि मुग्गल एंपायर, जिल्द, २ कलकत्ता, १८३४ ।

काशीप्रसाद जायसवाल—प्राच्छ्लम्स ऑफ शक्-सातवाहन
हिस्ट्री, पटना, १६३९।

एस० बील०—ट्रैवेल्स ऑफ फाहान।

वाटस—आन हुणसांग्स ट्रैवेल्स इन इंडिया, २ मार्ग
लंदन, १६०४।

अलेकजेंडर कनिंघम—आकेओलाजिकल सर्वे रिपोर्ट्स, जिल्ड
१, इ १७।

आनंद कुमार स्वामी—हिस्ट्री ऑफ इंडियन एंड इन्डोनेशियन
आर्ट, लंदन १६२७।

जे० पी० एच फोगल—कैटालॉग ऑफ दि आकेओलाजिकल
म्यूजियम, मथुरा, इलाहाबाद १६१०।

वासुदेव शरण अप्रबाल—हैंडबुक ऑफ स्कल्पचर्स इन मथुरा
म्यूजियम, इलाहाबाद १६३६।

मदनमोहन नागर—पुरातत्त्व संग्रहालय मथुरा की परिचय-
पुस्तक, इलाहाबाद १६४७।

रामचंद्र शुक्ल—हिंदी साहित्य का इतिहास, काशी, सं० २००५
रायकृष्णदास—भारत की चित्रकला, काशी सं० १६६६।

प्रभुदयाल मीतल—अष्टछाप परिचय, मथुरा सं० २००४।

प्रभुदयाल मीतल तथा द्वारिकादास परीख—सूरनिर्णय,
मथुरा सं० २००५।

गोस्वामी लक्ष्मणाचार्य—ब्रज की झाँकी, छठा सं०, गोरखपुर
सं० १६६७।

दुर्गाप्रसाद त्रिवेदी—ब्रज क्या और कहां है? मथुरा।

सत्येंद्र—ब्रज लोक संस्कृति, मथुरा, सं० २००४।

ब्रजभारती, नाममाहात्म्य तथा नामरी प्रचारिणी पत्रिका।

शुद्धि-पत्र

पुस्तक में मुद्रण की निम्नलिखित अशुद्धियाँ रह गई हैं। कहीं कहीं मात्राएं दूट गई हैं। पाठक कृपया सुधार कर पढ़ें।

४७	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४	३	मथरा	मथुरा
"	८	वेदिका	वेदिका
५	शीर्षपंक्ति	गनर	नगर
६	पादटिप्पणी	मधुर्नाम	मधुर्नाम
७	३	वन	वन
८	१६	सा परी	सा पुरी
१२	२२	के	के
१५	११	कालीन	कालीन
१६	शीर्षपंक्ति	मथूरा	मथुरा
"	४	बाला	*
"	११	छठी	सातवी
"	१३	मथरा	मथुरा
"	२२	गढ़बाल	गढ़बाल
"	२३	भी	भी
१७	शीर्षपंक्ति	य	या
"	२	कालीतर	कालांतर
२१	३	द्रव्य	द्रुष्टु
२४	१८	अयोध्या	अयोध्या
३३	१३	विद्रमै	विद्रुमै
३४	१६	श्रीकृष्ण	श्रीकृष्ण
५७	१४	साने	सोने

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६२	१६	साम्राज्य	साम्राज्य
६६	१५	(ई० ४००	(ई०४००)
६७	अन्तिम पंक्ति	कन्नाज का	फन्नीज को
६०	नीचे से चौथी	दिल्ली सुलतानों	दिल्ली के सुलतानों
७१	७	सन	शासन
"	८	बृत्तांत	बृत्तांत
७२	११	१५७०	१५७४
७३	१	जभाषा	ब्रजभाषा
"	८	अंग्रेजी	फ्रांसीसी
"	१०	ज	जो
७५	२	गलियाँ	गलियों
७६	३	चूड़ामनि	चूड़ामन
"	नीचे से दूसरी	हिंदुओं	हिंदुओं
८२	११	अब्दाली	में अब्दाली
८३	४	दिल्ली	दिल्जी
"	११	युद्ध मरहठों	युद्ध में मरहठों
८४	नीचे से तीसरी	बाना चाहा	बनवाना चाहा
८५	७	ट्रैवर्नियर	टैवर्नियर
"	१६	१५७०	१५७४
"	२१	मस्जिदां	मस्जिदों
८४	१५	लस्का	लस्काक
८५	८	समय क	समय की
"	१५	मूर्तिय	मूर्तियाँ
८६	नीचे से चौथी	बैसा हुआ	हुआ बैसा
८७	६	मूर्ति	मूर्ते

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६७	२०	पाराणि थ	पौराणिक
१०२	५	लोगां	लोगों
१०४	६	बीणा	बीणा
"	८	यात्रोत्सवां	यात्रोत्सवों
१०७	५	धोवियों और	धोवियों, कुम्हारों और
१०८	६	महनुभाव	मर्हनुभाव
११०	१६	मुख्यतया	मुख्यतया
११३	१८	इन्हाँने	इन्होंने
"	अंतिम	कमोरिन	कमोरिन ते
११५	१	विरजूसिह	विरजीसिह
११५	६	हीन	लीन
११८	२	धड़े	धड़े
११९	शीर्षपंक्ति	मललकला	(इसे निकालिए)
"	१	गोलन जी	घोलमजी
१२२	१२	एकादशी, पूर्णिमा, अमावस्या तथा	
१२२	१८	देवशयनी	देवोत्थानी
१२३	नीचे से तीसरी	प्रदाय	संप्रदाय
१२८ के सामने लगे चित्र पर कापी रहाट			कापी राहट
१२९	८	१५७०	१५७४
१३२	अंतिम	हुआं	हुआ
१३३	२	अहमदाबाद	सूरत
१३३	१२	फलांग	फलांग
१३५	१६	महाविद्या	चामुँडा
१३६	१७	पंचतीरथ	पंचतीरथी
१३७	८	चौदस	चौदस
१३८	५	बन्धभूषणों	बस्त्राभूषणों

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१३८	६	नगरकी	नगर की तथा अन्य दोनों
"	१४	धर्तमान	वर्तमान
१३९	७	खाला	खोला
"	८	व्यावहारिक	व्यावहारिक
१४०	९	पुस्कालयों	पुस्तकालयों
१४५	शीर्षपंक्ति	वर्तमान	वर्तमान
१४७	११	कहाँ छलकते	"कहाँ छलकते
"	नीचे से चौथी	'जमुना मैया में'	'जमुना मैया' में,
१४८	१	ब्रज के स्थानों	ब्रज के मुख्य स्थानों
"	१३	बरसाना	बरसाना
१५०	१३	म्यूजियम	म्यूजियम

पृष्ठ ७६-७७ पर श्रावण के आधार पर जो लिखा गया है कि केशवदेव मन्दिर की प्रधान मूर्ति को मेवाड़ के राजा राजसिंह ने ले जाकर नाथद्वारा में प्रतिष्ठापित किया, वह ठीक नहीं है। नाथद्वारा में जिस मूर्ति की प्रतिष्ठापना की गई वह गिरिराज वाले श्रीनाथ जी मन्दिर को प्रतिमा थी, न कि केशव-देव की। इस तथ्य की ओर मेरे मित्र डा० रघुवीरसिंह (महाराज कुमार सोतामऊ) ने मेरा ध्यान आकर्षित किया, जिसके लिये मैं उनका कृतज्ञ हूँ। प०० जवाहरलाल जी चतुर्वेदी का कथन है कि केशवदेव वाली प्रधान मूर्ति रजधान (काली और मांसी के बीच ले जाई गई)। ब्रज की अन्य प्रमुख मूर्तियाँ भी १७ वाँ शती में यहाँ से बाहर चली गईं।

नोट—आवरण—पृष्ठ पर का रेखा चित्र श्री जगन्नाथजी अदिवासी का बनाया हुआ है।

लोक साहित्य सहयोगी प्रकाशन लि।

मान्य-परामर्शदाताओं की सूची

- १—माननीय डा० कैलाश नाथ काटजू,
प्रान्तपाल, बंगाल प्रान्त, ३
- २—पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'
एम० एल० ए० (केन्द्रीय)
- ३—पं० श्री कृष्णदत्त पालीवाल, संस्थापक 'सैनिक'
- ४—सेठ कन्हैया लाल पोहार, साहित्य-वाचस्पति,
- ५—डा० राम प्रसाद त्रिपाठी, एम० ए०, ढी० एम०
अध्यक्ष, इतिहास-विभाग, विश्व विद्यालय
- ६—पं० श्री नारायण चतुर्वेदी, 'श्रीवर' एम० ए० (लंब
- ७—प्रो० गुलाब राय, एम० ए०,
संपादक — 'साहित्य-संदेश' ३
- ८—पं० जुगल किशोर चतुर्वेदी,
प्रधान मंत्री, राजस्थान कॉर्गेस कमैटी ३
- ९—पं० बनारसी दास चतुर्वेदी, ८
टीक
- १०—डा० दीनदयाल गुप्त, एम० ए०, ढी० लिट,
- ११—श्री त्रिलोकी नाथ कौल, आई० सी० एम०,
प्रथम मंत्री, भारतीय दूतावास, ८
लम
- १२—श्री नोविंग हाइन, रिसर्च स्कालर,
एयल विश्व विद्यालय, यू० एस० ए०,
- १३—पं० मुंशी राम शर्मा 'सोम', एम० ए०,
- १४—डा० सत्येन्द्र एम० ए०, पी० एच० ढी०,
- १५—डा० नगेन्द्र एम० ए० ढी० लिट., ८
न
- १६—श्री महावीर प्रसाद अप्रबाल, एम० ए०,
अध्यक्ष — हिन्दी विभाग, दरबार कालेज, ८
र
- १७—डा० छैल बिहारी गुप्त 'राकेश' एम० ए०, ढी० लिट.